निर्णय सुधा

निर्णय सुधा
ANCIENT DHARMA

लेखक- THOR aka Aman kr.

Date = 08-02-2024

भूमिका

सत्य क्या है? इसका निर्णय कौन कर सकता है? इसके लिए क्या पात्रता होनी चाहिए? समाजियो से दयानंद की समीक्षा की उम्मीद करना ठीक वैसा ही जैसा बिल्लियों से दूध की रक्षा करवाना। ठीक ऐसा ही अन्य संप्रदाय के साथ है। समाजियो को सत्य नही देखना। वह सभी शास्त्रो को दयानंद के चश्मे से देखते है। यदि कही उनके मत के विरुद्ध कुछ दिखता है तो उसको मिलावट बोलकर, अर्थ बदलकर, लीपा पोती करके दयानंद के मत के अनुकूल बना देते है। **समाजियो को लगता है की अगर ये बात दयानंद ने लिखी है तो इसके पीछे कुछ न कुछ विज्ञान अवश्य होगा। पौराणिक लोग समझ नही पा रहे है और व्यर्थ की निंदा अथवा खंडन करते है।** यह व्यक्ति विशेष की गुलामी है। ये कैसी निष्पक्षता है? ऐसा व्यक्ति कैसे दयानंद की समीक्षा कर सकता है। सत्य तक पहुँचना तो दूर की बात है।

समाजी सिद्धांत सही है अथवा नही यह निर्णय वही व्यक्ति कर सकता है। जो दयानंद को पहले से भगवान नही मानता। जब ग्रंथ मे लिखी बात दयानंद के विरुद्ध जाती है तब बिना हल्ला मचाये शांति से उसको स्वीकार करता है। जब तुम पहले से ही मान के बैठे हो की दयानंद ऋषि है और उनसे कोई गलती नही हो सकती फिर ये व्यर्थ का सत्य स्वीकार करने का नाटक क्यो? फिर shastrarth की चुनौती क्यो? फिर वाद विवाद खंडन मंडन की क्या आवश्यकता है? क्योकि अंततः तुमको मानना तो दयानंद की ही बात है। ये मुल्ला मानसिकता है। इस्लामी debate करते है। भले ही दुनिया के सारे प्रमाण उसके विरुद्ध चले जाए परंतु वह मोहम्मद को गलत मानने को तैयार नही है।

भला आज तक किस समाजी ने दयानंद की गलती मानी है? (जिसने प्रयास भी किया समाजियों ने उसे सुने बिना नकार दिया है।) जो समुदाय गलती को स्वीकार कर उसको ठीक नही करना चाहता उसके विकास की सारी संभावनाएं समाप्त हो जाती है। समाजियो के अंदर झूठा दंभ और अहंकार भरा हुआ है। दूसरे को हराने अपमानित करने का अहंकार। इसमे बच्चे अधिक है। 13 से 19 वर्ष के बच्चे के अंदर ऐसा होना स्वभाविक है। आशा है जैसे जैसे परिपक्वता आयेगी ज्ञान का विस्तार होगा वह इस विषय को बड़े आयाम मे देख पाएंगे।

ANCIENT DHARMA

समाजियों ने आर्ष और अनार्ष दो प्रकार के ग्रंथों की सूची बना रखी है। जो आर्षग्रंथ है, उसमें जो भी बात उनको गलत दिखती है, उसको वो मिलावट कह देते हैं। जो अनार्ष ग्रंथ उसमें जो भी बात गलत दिखती है तो उसको वो मिलावट नहीं बोलते। उसको कहते हैं कि ये गलत लिखा हुआ है और उसका खण्डन करते हैं। यही इनका दोगलापन है। एक उदहारण देखिये-

यदि पुराण मे कही लिखा हो की **"सुधर्मा नाम के यक्ष देव ने किसी अप्सरा का बलात्कार किया"**

समाजी- देखो तुम्हारे पुराण मे क्या लिखा है। गंदगी भरी है। गंदगी,,, देवी देवता rape कर रहे है।*

जब समाजी के किसी आर्ष ग्रंथ मे किसी ऋषि ने बलात्कार किया हो

हिंदू- देखो तुम्हारे ऋषि के बारे मे क्या लिखा है। पुराण का तो मज़ाक उड़ाते हो इस पर क्या बोलोगे

समाजी- पुराणिक पंडे को बलात्कार का अर्थ भी नही पता है। दिमाग मे कचड़ा भरा है तो rape ही समझोगे न। पहली बात बलात्कार का अर्थ rape होता ही नही है। ' बलात्कार का अर्थ बलात्करणम् अर्थात जबरदस्ती किया गया कार्य। कोश मे भी लिखा है। इसीलिए वहा ऋषि उस स्त्री के हाथ को जबरदस्ती पकड़ कर उसको समझा रहे है।

जब अपने पर आती है तो इस प्रकार की लिपा पोती ये हर जगह करते हुए मिलेंगे सत्यार्थ प्रकाश इसका सबसे बड़ा उदहारण है|

सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में लिखा है "कही-कहीं शब्द , वाक्य रचना का भेद हुआ है सो करना उचित था, क्योंकि इसके भेद किए विना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी, परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है, प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है। हाँ, जो प्रथम छपने में कहीं-कहीं भूल रही थी, वह वह निकाल शोधकर ठीक-ठीक कर दी गई है|"

परन्तु जब आप सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम और द्वितीय संस्करण को देखेंगे तो जमीन आसमान का फर्क है| मेरे पास ६८ वा संस्करण है| इसमे हुए परिवर्तन का अनुमान लगाना भी कठिन है| ऐसा लगता ही नहीं की दूसरा संस्करण प्रथम संस्करण में थोड़े बहुत भेद के साथ लिखी गई है| सत्यार्थ प्रकाश में हजारो परिवर्तन हो चुके है इसको जानने के लिए इस link पर जाये|

ANCIENT DHARMA

- *पौराणिक पोल प्रकाश इस प्रकार के पुराण प्रमाणों से भरा पड़ा है|

स्वपतिं परित्यज्य यः परपुरुषं सेवते,

सुखं न लभते कदाचिद् दुःखं हि सदा विन्दते।

धिग् नियोगं धिग् पुनरपि, यत्र नास्ति धर्मपथः,

नियोगे हि निंद्यं कर्म, तस्मात् सदा त्यज्यते जनः॥

अनुवादः जो अपनी पति को छोड़कर किसी अन्य पुरुष द्वारा सेवित होती है, वह कभी भी सुख नहीं पाती, सदैव दुःख ही पाती है। नियोग को धिक्कार हो, बार-बार धिक्कार हो, जहां धर्म का पथ नहीं होता। नियोग निंदनीय कर्म है, इसलिए इसे सदैव त्यागा जाता है

ANCIENT DHARMA

INDEX

ANCIENT DHARMA

I N D E X

CIENT DHARMA

1. जैसा ऋतुगमन का विधि अर्थात् रजोदर्शन के पांचवें दिवस से लेके सोलहवें दिवस तक ऋतुदान देने का समय है उन दिनों में से प्रथम के चार दिन त्याज्य है, रहे १२ दिन, उनमें एकादशी और त्रयोदशी को छोड के बाकी १० रात्रियों में गर्भाधान करना उत्तम है। और रजोदर्शन के दिन से लेके १६वीं रात्रि को पश्चात न समागम करना।[sp2]

अनुशीलन- ऋषि दयानंद के लिखे गए इन वाक्यों से यह ज्ञात होता है कि यहाँ पर sex केवल संतान उत्पत्ति के लिए करने को कहा गया है। जहाँ भी उनके लिखित शास्त्र ग्रंथ हम को प्राप्त होते हैं, वहाँ sex केवल संतान उत्पत्ति के लिए ही करने को कहा है। क्योकि महिलाओ में menstrual cycle सामान्य रूप से २८ days का होता है। स्वामी जी ने १७ वे दिन से लेके २८ वे दिन तक sex करने को मना किया है। इस समय काल में sex करने में कोई समस्या नहीं है, परन्तु १७ वे से २८ वे दिन महिलाये सब से कम fertile होती है, अथवा होती ही नहीं है। तो इस समय काल में sex रोकने का कारण स्पष्ट है।

- **menstrual cycle start होने के बाद ४ दिन (One to four days out of 24 days.) sex मत करो**

इन दिनों निषेध करना ही उचित है क्योंकि मेडिकल साइंस भी इसमें जो साइड इफेक्ट बताता है उसको देखकर यहाँ निषेध करना ठीक ही है।

“Another worry about having sex during your period is the risk of transmitting a sexually transmitted infection (STI), like hepatitis. This virus lives in blood and transmitted through contact with infected menstrual blood”. *[healthline]*

ऋतु: स्वाभाविक: स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृता: । चतुर्भिरितरैः सार्थमहोभिःसद्विगर्हितैः॥४६॥[मनु ३.४३]

स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल सोलह रात्रियाँ अर्थात् रजोदर्शन के दिन से लेकर सोलह रात्रि पर्यन्त माना गया है, उनमें सज्जनों द्वारा निन्दित अर्थात् समागम के अयोग्य जो रजोदर्शन के प्रथम चार दिन रात हैं उनको [३.४७] साथ मिलाकर यह सोलह रात्रियों का ऋतुकाल है। [रात्रि कथन इसलिए है कि दिन में समागम वर्जित है। वह कार्य काल है।] ॥ ४३ ॥

- **11वे और 13 वे दिन sex मत करो**

सामान्यतः विहित १० रात्रियों में भी पौर्णमासी, अमावस्या, चतुर्दशी तथा अष्टमी में ऋतुदान निषिद्ध है। इन दिनों रतिक्रिया सर्वथा वर्जित है। इसमें मनुस्मृति के निम्न श्लोक प्रमाण हैं—

अभावस्यामष्टमीं च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् ॥। ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ४।१२८

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा पर्ववर्ज व्रजेच्चैनां तद् व्रतो रतिकाम्यया ३।४५

अर्थात् - गृहस्थ द्विज को चाहिए कि वह ऋतुकाल होते हुए भी अमावस्या, अष्टमी, पूर्णिमा तथा चतुर्दशी के दिन ब्रह्मचारी रहे।

मेडिकल साइंस के अनुसार इसमें भी करना कुछ गलत नहीं है, परंतु यहाँ पर धार्मिक अनुष्ठान के कारण इन दिनों को निषिद्ध किया गया है।

पूर्वपक्ष- The lunar cycle has an impact on human reproduction, in particular fertility, menstruation, and birth rate. Melatonin levels appear to correlate with the menstrual cycle*[source- The lunar cycle: effects on human and animal behavior and physiology - PubMed (nih.gov)]*

उत्तर- उसी रिपोर्ट को पूरा पढ़ लो - However, a number of reports find no correlation between the lunar cycle and human reproduction and admittance to clinics and emergency units. [source- The lunar cycle: effects on human and animal behavior and physiology - PubMed (nih.gov)]

यदि मान लो की lunar cycles का प्रभाव पड़ता भी है तो उससे ११वे और १३ वे दिन sex न करने से क्या लेना देना है, क्योंकि प्रभाव तो पुरे २८ दिन पड़ेगा
traditional Chinese उपचार विधि में माना जाता है की lunar cycles का प्रभाव शरीर पर पड़ता है। क्योंकि moon cycles और menstrual cycles का चक्र लगभग समान होता है। चीनी लोगो ने इस पर एक शोध पत्र भी प्रकाशित किया था जिसे बाद में दूसरे शोध द्वारा ख़ारिज कर दिया गया।

"Popular belief and many works of literature suggest that there may be some synchronicity between menses and the phases of the Moon."

"That may be based on **the similarity of duration between menstrual cycles and lunar cycles."**

"One full revolution of the Moon around the Earth takes 27 days, 7 hours, and 43 minutes. A moon phase cycle, during which the amount of Moon surface that we are able to see from Earth waxes and wanes, takes 29.5 days.

The length of menstrual cycles can be in the range of 25–30 daysTrusted Source, with the median duration of a menstrual cycle being 28 days.

One 1986 study — which Sung Ping Law, from the Department of Gynecology at the Canton Traditional Chinese Medical College in Guangzhou, conducted — did seem to find a link between menstrual and lunar cycles.

The research, which appears in the journal *Acta Obstetricia et Gynecologica ScandinavicaTrusted Source*, studied the cycles of 826 female participants, aged 16–25 years, over "4 lunar months in different seasons."

The study concept, the author writes, "was based on the concept of traditional Chinese medicine that human physiological rhythms display synergism with other natural rhythms."

- However, more recent research contradicts the notion that menstrual cycles often synch with moon phases.

For example, a year-long retrospective study from 2013 — which appears in the journal *Endocrine RegulationsTrusted Source* — found no "synchrony of lunar phases with the menstrual cycle."

This study monitored 980 menstrual cycles in 74 females of reproductive age over a calendar year. The authors say that the findings came "in defiance of traditional beliefs."

A more recent study, which the company who program the period tracking app Clue commissioned in 2016, also concludes that synchrony between menstrual and moon cycles is a "myth."

This research, which analyzed over 7.5 million menstrual cycles, suggests that periods most likely do "not sync with the lunar cycle."

The researchers collected data on menstrual patterns from 1.5 million Clue users. Clue data scientist Dr. Marija Vlajic Wheeler analyzed them.

“Looking at the data, we saw that period start dates fall randomly throughout the month, regardless of the lunar phase,” says Dr. Wheeler.

Clue’s raw data and subsequent analysis are not available to the public.” [source- Do menstrual and lunar cycles synchronize? What scientists say (medicalnewstoday.com)]

- **16 वे दिन के बाद sex मत करो**

स्वामी जी ने sex केवल संतान की उत्पत्ति के लिए करने को कहा है। 16 वे दिन के बाद संतान की उत्पत्ति की संभावना बहुत कम हो जाती है। menstrual cycle के 14 वे दिन ovulation के बाद egg 24 hours ही जीवित रहता है।

पूर्वपक्ष –बिना पुत्र उत्पत्ति के sex करना गलत है।

उत्तर- क्या गलत है?

पूर्वपक्ष- वीर्य व्यर्थ होता है, और उससे आयु घट जाती है?

उत्तर- वीर्य व्यर्थ होने से आयु कैसे कम हो सकती है?

पूर्वपक्ष- वीर्य व्यर्थ जाता दोनों की आयु घट जाती है और अनेक प्रकार के रोग होते है[sp4]

उत्तर- Pregnant wife के साथ निषेध किया है।

पूर्वपक्ष - Pregnant wife के साथ आरम्भ में करने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- समस्या नहीं, लेकिन महिला के शरीर में स्वयं बहुत परिवर्तन हो रहे होते है। sex करने की इच्छा भी कम हो जाती है तो शरीर के इस सूचना को समझना चाहिए। स्त्री चाहे तो भी उसको समझाना चाहिए, इस समय संसर्ग से दूर रहना चाहिए।

“In the first trimester of pregnancy, your estrogen and progesterone levels rise. Symptoms in early pregnancy that may lower your sexual desire include:

- hormonal changes
- exhaustion
- queasiness
- breast sensitivity

Around week 10, these increased hormone levels will drop off. At that point, you're likely to experience less fatigue and nausea.

With the loss of those two less-than-fun first trimester symptoms may come an increase in your sex drive. You'll start to get into a rhythm and feel more like your energetic self.

Later in the third trimester, weight gain, back pain, and other symptoms may again decrease your sexual drive." [healthline]

और शास्त्रों में भी इस समय दूर रहने को कहा गया है। छात्र जीवन में इन्द्रियों पर संयम इसीलिए ही सिखाया जाता है, विवाहित होने के बाद इसकी आवश्यकता पड़ती है।

पूर्वपक्ष- मेरा प्रश्न वही है- "वीर्य व्यर्थ होता है, और उससे आयु घट जाती है।"

उत्तर- सीमा में किसी कार्य करने से कोई हानि नहीं है। यदि आपकी पत्नी और आपकी इच्छा sex करने की है, तो इसमें कुछ गलत नहीं है। शास्त्रों में भी बिना संतान की इच्छा के व्यक्ति sex कर सकता है। कहा है-

गुरूष्णवासा दिग्धाङ्गो गुरुणाऽगुरुणा सदा । शयने प्रमदां पीनां विशालोपचितस्तनीम् ॥१५॥ आलिंग्धाऽगुरुदिग्धांगी सुप्यात्समदमन्मथः । प्रकामं च निषेवेत मैथुनं शिशिरागमे ॥ १६ ॥

[चरकसंहिता सूत्रस्थानम्]

अर्थ- शीतकाल में भारी तथा गरम कपड़ों को धारण करना चाहिये । और अगर को घिसकर शरीर पर गाढ़ प्रलेप करना चाहिये । तथा श्रानन्द एवं कामयुक्त हुआ पुरुष शयन के समय हृष्ट पुष्ट, विशाल एवं उपचित (परिपुष्ट, भरे हुए) स्तनों वाली तथा जिसने अपने अंगो पर अगर का लेप किया हुआ है-ऐसी प्रमदा (स्त्री, पत्नी), का आलिङ्गन करके सो जाये । शिशिर में यथेष्ट मैथुन कर सकता है ।

यथेष्ट अर्थात इच्छा अनुसार मैथुन कर सकता है।(ayurved)

रही वीर्य व्यर्थ जाने की बात तो इसको समझो- first you need to understand how many sperm does a man ejaculate during intercourse. “The normal volume varies from 1.5 to 5.0 milliliter per ejaculation. The sperm count varies from 20 to 150 million sperm per milliliter. At least 60% of the sperm should have a normal shape and show normal forward movement (motility).”[source] Almost 300 million to 500 million sperm man ejaculate during intercourse.

“On average, with each ejaculation, nearly 200 to 300 million sperm are released.” [source]

तो इन लगभग 300 मिलियन स्पर्म में जो कि हर बार रिलीज होता है केवल एक ही स्पर्म egg को फर्टिलाइज़ करता है। बाकी सब व्यर्थ ही जाता है, बाकी सब मर जाते हैं। तो ये जो आप कहते हो कि स्पर्म व्यर्थ जाता है। अगर संतान उत्पत्ति के लिए किया भी जाए फिर भी व्यर्थ ही जाएगा और सारा व्यर्थ हो जाता है। केवल एक ही काम का होता है ।

नियोग में नियुक्त पुरुष को स्त्री के पास तब तक जाने को कहा जब तक कि वह गर्भधारण न कर लें ऋतु काल में वह गमन कर सकता है। स्त्री एक ही बार में गर्भवती हो जाए, इसकी कोई गारंटी नहीं। इसलिए जब तक वह गर्भवती नहीं होती, तब तक नियुक्त पुरुष उस स्त्री के पास जा सकता है।(ऐसा दयानंद स्वामी ने कहा है|) तो इसमें भी तो बहुत सारा वीर्य व्यर्थ होता है। अत: सीमा में कोई भी धर्म नियम से युक्त कार्य करने पे कुछ हानि नहीं । वीर्य नष्ट होने से कोई आयु नहीं घटती। अगर नष्ट होने से आयु घटे तो शास्त्रों में 10 पुत्र प्राप्त करने को कहा गया है।10 पुत्र प्राप्त करने में लगभग 6,000 million sperm नष्ट हो जायेंगे और ये नंबर बहुत कम है इससे ज्यादा भी हो सकते है। पर ऐसा कुछ नहीं होता ये सब बेकार की बाते है।

यदि शास्त्रों में केवल संतान प्राप्ति करने के लिए sex करना होता तो पुरुषों में घोड़े के समान sex पावर की बात नहीं की जाती और ना ही ये कहा जाता की कई पुरुष हाथी के समान वीर्य क्षरण करते है। ये सब एक उत्तम sex लाइफ और अपनी पत्नी को संतुष्ट करने के लिए कहा गया है। जिससे व्यभिचार न हो और पति पत्नी सुख से रहे। एक उत्तम गृहस्थ जीवन के लिए ये आवश्यक भी है। **[यदि पुंसां गतिर्ब्रह्मन् कथंचिनोपपद्यते । अप्यन्योन्यं प्रवर्तन्ते न हि तिष्ठन्ति भर्तृषु ॥ २२ ॥** (महा० अनुशासन पर्व,दान धर्म पर्व, अध्याय ३८)

अर्थ- ब्रह्मन् ! यदि स्त्रियको पुरुषकी प्राप्ति किसी प्रकार भी सम्भव न हो और पति भी दूर गये हो तो वे आपस में ही कृत्रिम उपायों से ही मैथुन में प्रवृत्त हो जाती हैं ॥ २२ ॥]

गोधूमचूर्णषष्ठानि 'सपिष्युत्कारिकां पचेत् ॥३८॥ तां नातिपक्वां मृदितां कौक्कुटे मधुरे रसे। सुगन्धे प्रक्षिपेदुष्णे यथा सान्द्रोभवेद्रसः ॥३६॥ एष पिण्डरसो वृष्यः पौष्टिको बलवर्धनः। अनेनाश्व इवोदीर्णो बली लिङ्गं समर्पयेत् ॥४०॥ शिखितित्तिरिहंसानामेवं पिण्डरसो मतः ।इति वाजीकरणपिण्डरसाः । [चरकसंहिता चिकित्सास्थानम्, अध्याय २]

अर्थ- खांड, उड़द की दाल, वंशलोचन, दूध, घी और छठा गेहूँ का आटा; इन्हें यथायोग्य परिमाण में लेकर यथाविधि उत्कारिका बनाकर घी में मृदु तल ले। बहुत अधिक न तले। पश्चात् उसे तोड़कर मधुर तथा इलायची आदि सुगन्धि द्रव्यों से सुगंधित गरम गरम कुक्कुटमांसरस में डाल दें। जिससे वह रस गाढ़ा हो जाय। वह पिण्डरस कहाता है। यह वृष्य पौष्टिक और बलवर्धक है। इसके प्रयोग से पुरुष घोड़े के सदृश मैथुनशक्ति से युक्त होता है।

न हि जातबलाः सर्वे नराश्चापत्य भागिनः ॥ बृहुच्छरीरा बलिनः सन्ति नारीषु दुर्बलाः ॥ ३ ॥ सन्ति चाल्पबलाः स्त्रीषु वलवन्तो बहुप्रजाः। प्रकृत्या चाबलाः सन्ति सन्ति चामयदुर्बलाः ॥ ४ ॥ नराश्चटकवत्केचिद् व्रजन्ति बहुशः स्त्रियम्। गजवच्च प्रसिञ्चन्ति केचिन्न बहुगामिनः ॥ ५ ॥ कालयोगबलाः केचित्केचिदभ्यसनधवाः। केचित्प्रयत्नैर्वाह्यन्ते वृषाः केचित्स्वभावतः ॥ ६॥

[चरकसंहिता चिकित्सास्थानम्, अध्याय २]

अर्थ- यह आवश्यक नहीं कि जितने बली पुरुष हैं उनकी सन्तान भी अवश्य हो। महाकाय और बली पुरुष भी स्त्रियों में दुर्बल देखे जाते हैं। अर्थात् शरीर के बली होने से ही वह पुरुष मैथुन में भी समर्थ है यह नहीं कहा जा सकता। ऐसे पुरुष भी संसार में बहुत से हैं जो निर्बल हैं, परन्तु मैथुन में अच्छी प्रकार समर्थ हैं और उनकी बहुत सी सन्तानें हैं। कई पुरुष स्वभाव से ही दुर्बल होते हैं और कई रोगों के कारण दुर्बल हो जाते हैं। कई पुरुष चटक के समान बहुत बार स्त्रीभोग करते हैं। कई पुरुष मैथुन के समय हाथी के समान वीर्य का क्षरण करते हैं। कई पुरुष बहुत स्त्रीगामी नहीं होते। अर्थात् कम बार ही मैथुन कर सकते हैं। अथवा कई जो बहुधा स्त्रीगामी नहीं होते व गज- वत् बड़ी मात्रा में वीर्य का क्षरण करते हैं। कई विशेष २ कालों में मैथुनसमर्थ होते हैं। कई अभ्यास से (बारबार मैथुन करने से) मैथुन में समर्थ हो पाते हैं। कई अन्य प्रयत्नों (चुम्बन आलिङ्गन आदि द्वारा) से इसमें समर्थ होते हैं। कई पुरुष स्वभावतः ही वृप होते हैं। अर्थात् वीर्य और पुंस्त्व शक्ति से सम्पन्न होते हैं।

अथ यामिच्छेन्न गर्भं दधीतेति तस्यामर्थं निष्ठाय मुखेन मुखः संधायाभिप्राण्यापान्यादिन्द्रियेण ते रेतसा रेत आदद इत्यरेता एव भवति ॥ १० ॥ [बृहदारण्यकोपनिषद्, ६.४.10]

अर्थ- अपनी जिस पत्नीके विषयमें ऐसी इच्छा हो कि वह गर्भधारण न करे तो उसकी योनिमें अपनी जननेन्द्रियको स्थापित करके उसके मुखसे अपना मुख मिलाकर अभिप्राणन कर्म करके अपानन क्रिया करे[वीर्य को बाहर छोरे] और कहे--' इन्द्रियस्वरूप वीर्यके द्वारा मैं तेरे रेतस्को ग्रहण करता हूँ, ऐसा करनेपर वह रेतोहीन ही हो जाती है - गर्भिणी नहीं होती ॥ १० ॥

अथ यामिच्छेद् दधीतेति तस्यामर्थं निष्ठाय मुखेन मुख: संधायापान्याभिप्राण्यादिन्द्रियेण ते रेतसा रेत आ-दधामीति गर्भिण्येव भवति ॥ ११ ॥[बृहदारण्यकोपनिषद्, ६.४.11]

अर्थ- पुरुषको अपनी जिस पत्नीके सम्बन्धमें ऐसी इच्छा हो कि यह गर्भ धारण करे, वह उसकी योनिमें अपनी जननेन्द्रिय स्थापित करके उसके मुखसे मुख मिलाकर पहले अपानन क्रिया करके पश्चात् अभिप्राणन कर्म करे[वीर्य को स्त्री के अंदर स्थापित करे] और कहे- 'मैं इन्द्रियरूप वीर्यके द्वारा तेरे रेतस्का आधान करता हूँ।' ऐसा करनेसे वह गर्भवती ही होती है ॥ ११ ॥

तो यहाँ स्पष्ट रूप से दोनों प्रकार का विधान किया गया है, आप मैथुन संतान प्राप्ति के लिए भी कर सकते हो और यदि आपकी इच्छा संतान प्राप्त करने की नहीं है फिर भी मैथुन कर सकते हो।

"How can sex benefit your body?

This study suggests that sex can be good cardiovascular exerciseTrusted Source in younger men and women. Though sex isn't enough exercise on its own, it can be considered light exercise.

Some of the benefits you can get from sex include:

- lowering blood pressure
- burning calories
- increasing heart health
- strengthening muscles
- reducing your risk of heart disease, stroke, and hypertension
- increasing libido

People with active sex lives tend to exercise more frequently and have better dietary habits than those who are less sexually active. Physical fitness may also improve sexual performance overall.” [source-The Health Benefits of Sex (healthline.com)]

मैथुन को रोकने से शूल की उत्पत्ति होती है-

उच्चैर्भाष्यातिभाष्याभ्यां तीक्ष्णपानात्प्रजागरात् शीतमारुतसस्पर्शाद्व्धवायाद्वेगनिप्रहात् ॥१५॥ अभिघातोपवासाच्च विरेकाद्वमनादति । वाष्पशोकभयत्रासाद् भारमार्गातिकर्षणात् ॥१६॥ शिरोगता वै 'धमनीर्वायुराविश्य कुप्यति । ततः शूलं महत्तस्य वातात्समुपजायते ॥१७॥[चरक संहिता, सूत्रस्थान, अध्याय १७]

अर्थ- ऊँचा बोलने से अधिक बोलने से, तीक्ष्ण मद्य व्यादि के पीने से, रात्रि जागरण से, शीतल वायु के स्पर्श से, **मैथुन के वेगों को रोकने से**, चोट लगने से; उपवास से, श्रत्यन्त विरेचन वा अत्यन्त वमन से, आँसुओं से अर्थात् रोने से, शोक से, भय से, डर से, भार उठाने तथा अत्यन्त चलने से, उत्पन्न २ अत्यन्त कृशता से शिरोगत (शिर की धमनियों (Nerves) मैं वायु प्रविष्ट होकर कुपित हो जाती है। **तदनन्तर उस वायु से महान् शूल उत्पन्न होता है** ॥ १५--१७॥ [शूल रोग -वायु के प्रकोप से होनेवाला एक प्रकार का बहुत तेज दर्द। विशेष—यह दर्द प्रायः पेट, पसली, कलेजे या पेड़ू आदि में होता है ।]

शुक्रवेग रोकने से उत्पन्न रोग का उपचार मैथुन-

तत्राभ्यङ्गावगाहाश्च मदिरा चरणायुधाः । शालिः पयो निरूहाश्च शस्तं मैथुनमेव च ॥ १० ॥[चरक संहिता, सूत्रस्थान]

शुक्ररोध की चिकित्सा - शुक्रवेग को रोकने से उत्पन्न हुई व्याधि को रोकने के लिये अभ्यङ्ग, श्रवगाहन, मदिरा, कुक्कुटमांस, शालि चावल, पय (दूध), निरूहण (आस्थापन) वस्ति तथा **मैथुन हितकर है।**

अत: जो केवल पुत्र प्राप्ति के लिए sex करना चाहता है, वह भी ठीक है और जो केवल संतान उत्पत्ति के लिए पत्नीगमन नहीं करते वह भी ठीक है।

पूर्वपक्ष- यथेष्ट sex कर सकता है, ये ठीक नहीं है।

उत्तर- यहाँ यथेष्ट का अर्थ सम्मति इच्छानुसार सीमा में ही sex करने को कहा है।

सीमा से अधिक पानी भी पीना हानिकारक है sex की फिर बात ही क्या करनी। किसी भी कार्य की अति बुरी होती है।

**लेखक इन आयुर्वेद के प्रमाणों को शब्दशः नहीं मानता पूर्वपक्ष में प्रमाण होने के कारन इसे प्रस्तुत किया गया है/ लेखक का मत है यदि स्त्री पुरुष अपनी इच्छा से, बिना संतान की चाह रखे संयोग करे तो इसमे कोई दोष नहीं है/*

2. जिनको पुत्र की इच्छा हो वे छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं, ये छह रात्रि ऋतुदानों में उत्तम जानें। परन्तु इनमें भी उत्तर-उत्तर श्रेष्ठ हैं और जिनको कन्या की इच्छा होवे पांचवीं, सातवीं, नवमी और पन्द्रहवीं, ये चार रात्रि उत्तम समझें। इससे पुत्रार्थी युग्म रात्रियों में ऋतुदान देवे। (सं०वि० गर्भाधानप्रकरण)[manusmriti 3.48][सुश्रुत शरीरस्थान, २]

अनुशीलन- ऐसा पौराणिकों ने भी लिखा है – **"रजस्वला होने के पश्चात सम रात्रियो में गर्भाधान करने से पुत्र ८-१०-१२-१४- १६ तथा विषयम रात्रि ५-७-९-११-१३ में कन्या जन्म होता है।** (हेमाद्रि निर्णय पृ. ८६)" [षोडश संस्कार डा रामाधार p3]

इसी प्रकार की मिलती जुलती बाते Shettles method में कही जाती है। ये तरीका दावा करता है कि आप चाहे तो लड़के या लड़की पैदा कर सकते हैं।

Let's dive into this theory

What is the Shettles method?

The Shettles method has been around since the 1960s. It was developed by Landrum B. Shettles, a physician living in the United States.

Shettles studied sperm, the timing of intercourse, and other factors, like sexual position and the pH of body fluids, to determine what might have an effect on which sperm reach the egg first. After all, the sperm that fertilizes the egg is ultimately what determines the sex of the baby. (More on that process in a minute.)

From his research, Shettles developed a method that takes all these factors into account. As you can imagine, this information was in high demand. So, if you'd like some in-depth reading, you might consider picking up Shettles' book "How to Choose the Sex of Your Baby," which was last updated and revised in 2006.

How sex is determined during conception

The sex of your baby is determined in the most basic way at the moment when the sperm meets the egg. A woman's eggs are genetically coded with the female X

chromosome. Men, on the other hand, produce millions of sperm during ejaculation. Roughly half of these sperm may be coded with the X chromosome while the other half carry the Y chromosome.

If the sperm that fertilizes the egg carries the Y chromosome, the resulting baby will likely inherit XY, which we associate with being a boy. If the sperm that fertilizes the egg carries the X chromosome, the resulting baby will likely inherit XX, meaning a girl.

Of course this depends on the most general understandings of what sex is and how it is defined.

Male vs. female sperm

Shettles studied sperm cells to observe their differences. What he theorized based on his observations is that Y (male) sperm are lighter, smaller, and have round heads. On the flip side, X (female) sperm are heavier, larger, and have oval-shaped heads.

Interestingly, he also studied sperm in some rare cases where men had fathered either mostly male or mostly female children. In the cases where the men had mostly male kids, Shettles discovered that the men had far more Y sperm than X sperm. And the opposite also rang true for the men who had mostly female kids.

Ideal boy/girl conditions

In addition to physical differences, Shettles believed that male sperm tend to swim more quickly in alkaline environments, like in the cervix and uterus. And female sperm tend to survive longer in the acidic conditions of the vaginal canal.

As a result, the actual method for conceiving a girl or boy via the Shettles method is dictated by timing and environmental conditions that help favor male or female sperm.

How to try for a boy with the Shettles method

According to Shettles, timing sex as close to or even after ovulation is the key to sway for a boy. Shettles explains that couples trying for a boy should avoid sex in the time between your menstrual period and days before ovulation. Instead, you should have sex on the very day of ovulation and up to 2 to 3 days after.

The method claims the ideal position for conceiving a boy is one that allows the sperm to be deposited as close to the cervix as possible. The position suggested by Shettles is with the woman being entered from behind, which allows for the deepest penetration.

Douching is another suggestion made by Shettles. Since the theory says that male sperm like a more alkaline environment, douching with 2 tablespoons of baking soda mixed with 1 quart of water may be effective. However, Shettles explains that douches need to be used before each timed intercourse.

Even the timing of orgasm is a consideration. With Shettles, couples are encouraged to have the woman orgasm first. Why does this matter? It all goes back to alkalinity. Sperm are naturally more alkaline than the acidic environment of the vagina. So, if a woman orgasms first, the idea is that her secretions are more alkaline and may help the male sperm swim along to the egg.

How to try for a girl with the Shettles method

Swaying for a girl? The advice is basically the opposite.

To try for a girl, Shettles says to time sex earlier in the menstrual cycle and abstain in the days immediately before and after ovulation. This means that couples should have sex starting in the days after menstruation and then stop at least 3 days before ovulation.

According to Shettles, the best sexual position for conceiving a girl is one that allows for shallow penetration. This means missionary or face-to-face sex, which Shettles says will make the sperm have to travel farther in the acidic environment of the vagina, favoring the female sperm.

To add more acidity to the equation and favor the female sperm, Shettles suggests a douche made from 2 tablespoons of white vinegar and 1 quart of water can be used. Again, the douche should be used each time couples have sex to be the most effective. (And again, talk to your doctor before you give this specific douche a try.)

What about orgasm? To avoid adding more alkalinity to the environment, the method suggests a woman should try to refrain from orgasm until after the male has ejaculated.

Does the Shettles method work?

You can find plenty of people who will say that the method worked for them, but does the science support that?

Blogger Genevieve Howland at Mama Natural is one who says that the Shettles method helped her sway for a girl with her second pregnancy. She and her husband timed sex 3 days before ovulation and the pregnancy did result in a girl. She explains further that with her first pregnancy, they had sex right on the day of ovulation, which resulted in a boy.

This one case study aside, Shettles claims an overall 75 percent success rate in the current edition of his book.

Not all researchers agree that things are so cut and dry, however.

In fact, a 1991 review of studiesTrusted Source refutes Shettles' claims. In those studies, researchers also took into account the timing of sexual intercourse, as well as markers of ovulation, like basal body temperature shift and peak cervical mucus.

The studies concluded that fewer male babies were conceived during the peak ovulation time. Instead, male babies tended to be conceived in "excess" 3 to 4 days before and in some cases 2 to 3 days after ovulation.

A more recent study from 2001Trusted Source refutes the idea that X- and Y-containing sperm are shaped differently, which goes directly against Shettles' research. And an older study from 1995 explains that sex 2 or 3 days after ovulation doesn't necessarily lead to pregnancy at all.

The science is a bit murky here. Currently, the only guaranteed way to select the sex of your baby is through preimplantation genetic diagnosis (PGD), a test sometimes performed as part of in vitro fertilization (IVF) cycles.[source]

A May 2021 article in Fertility & Sterility reflected on a paper published in the same journal 50 years earlier that month, stating that "... scientific journals such as Fertility and Sterility and The New England Journal of Medicine have continued to publish research dispelling the claims of the Shettles Method." [source- Carpinello, Olivia; DeCherney, Alan (May 2021). "Trust science?". *Fertility and Sterility*. **115** (5): 1196. doi:10.1016/j.fertnstert.2021.03.001. PMID 33823996. S2CID 233174346,,, Shettles method - Wikipedia]

No scientific research verifies this

It is considered a proven fact in science. Even if an experiment is done 1000 times, the result should be the same every time. If there is a difference in the result even once then it is not a principle. 1991 review of studies and another research proves this wrong.

"जो स्त्री के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो स्त्री और पुरुष के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो पुरुष के शरीर में प्रवेश करता है।[sp9]"

यह बात भी स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखी है। अब ऊपर जो गर्भाधान प्रकरण में लिखा है, उस बात को अगर मान लिया जाए तब तो बच्चे की लिंग का निर्धारण हम करने में समर्थ है। 'even days sex करने पर लड़के उत्पत्ति होती है' और यहाँ सत्यार्थ प्रकाश में लिख रहे है कि लड़का और लड़की कर्म के अनुसार उत्पन्न होता है। यहाँ स्वामी जी के अपने ही वक्तव्य में विरोध है। कर्म फल व्यवस्था ईश्वर द्वारा ही बनाया गया है। even odd days system से ईश्वर का नियम ही भंग हो जायेगा।

इस प्रकार से यदि बच्चे का लिंग निर्धारण होता तो भारत में लडके पाने के चक्कर में बहुत भ्रूण हत्या हुई और मनुस्मृति में ये बात बहुत पुरानी है, तो यहाँ के लोगो ने उसको क्यों नहीं अपनाया? यदि ऐसा संभव होता तो सारे लोग लड़के ही पैदा कर लेते। ऐसा हो ही नहीं सकता। ऐसा होना सीधे ईश्वर के नियम में हस्तक्षेप है। यदि ऐसा हो जाए तब तो मनुष्य पूरा sex रेसियो ही बिगाड़ दें। कई लोग कहते हैं कि वहाँ ऐसा नहीं कहा गया कि ऐसा होगा ही। यहाँ तो एक केवल संभावना है कि इस टाइम करोगे तो ज्यादा चान्सेस हैं। ऐसी संभावना कोई भी व्यक्ति कर सकता है, तब क्या हम उसको सत्य मान ले संभावना कब से सत्य होने लगी? वो तो आप odd days भी sex करो तो लडके होने की संभावना है ही।

3. स्वामी जी ने होम न करने वाले को पापी कहा है। [sp3] **अब बताओ कोई व्यक्ति जिसने कभी होम न किया लेकिन जीवन में परोपकार और पुण्य कार्य किया हो वो पापी हो गया?**

अनुशीलन- कोई पाप नहीं है।

यज्ञ की महत्ता को दर्शाने वाले याज्ञवल्क्य और जनक के बिच का संवाद बहुत ही महत्वपूर्ण है-

"तद्वैतज्जनको वैदेहो याज्ञवल्क्यं पप्रच्छ— वेत्थाग्निहोत्रं याज्ञवल्क्य इति । वेद सम्राडिति । किमिति पयऽएवेति ॥१॥ यत्पयो न स्यात् केन जुहुयाऽइति । व्रीहियवाभ्यामिति । यद् व्रीहियवौ न स्यातां केन जुहुयाऽइति । या अन्या ओषधय इति । यदन्या ओषधयो न स्युः केन जुहुयादिति ॥२॥ यदारण्या ओषधयो न स्युः केन जुहुयादिति । वानस्पत्येन इति । यद् वानस्पत्यं न स्यात्केन जुहुयाऽइति । अद्भिरिति । यदापो न स्युः केन जुहुयाऽइति ॥३॥ स होवाच न वा इह तर्हि किञ्चनासीदथैतदहूयतैव - सत्यं श्रद्धायामिति । वेत्थाग्निहोत्रं याज्ञवल्क्य धेनुशतं ददामीति होवाच ॥४॥[शतपथब्राह्मणम्/काण्डम् ११/अध्यायः ३/ब्राह्मणं १]

अर्थात् - जनक वैदेह ने याज्ञवल्क्य से पूछा- याज्ञवल्क्य, क्या अग्निहोत्र की सामग्री जानते हो ? उसने कहा— सम्राट् ! जानता हूँ। जनक— क्या ? याज्ञ० – दूध या घृत । जनक — यदि दूध न हो तो किससे हवन करें ? याज्ञ० – जौ और चावल से; जनक- यदि जौ और चावल न हों तो..... ।; याज्ञ० — जो अन्य ओषधयाँ हों, उनसे ।; जनक — जो अन्य ओषधियाँ न हों तो ।; याज्ञ० – जंगली ओषधियों से ।; जनक– यदि जंगली ओषधियाँ भी न हों तो । याज्ञ० – यदि वे भी न हों तो जल से जनक – यदि जल भी न हो तो कुछ भी न हो तो भी हवन तो करना ही चाहिए ।; सत्य को श्रद्धा में होम दें ।; इसपर जनक ने कहा— याज्ञवल्क्य, आप अग्निहोत्र के विषय में जानते हैं, अतः मैं आपको सौ गौवें देता हूँ। यज्ञ को यहाँ इतना महत्वपूर्ण बताया है की यदि आपके पास कुछ न भी हो तब भी **याज्ञवल्क्य** ने कहा **"सत्य को श्रद्धा में होम दें"** अर्थात सत्य में श्रद्धा रखो, सत्य बोलने रूपी यज्ञ करो। इसी प्रकार **गीता** में अनेक प्रकार के यज्ञ का वर्णन है-

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥४.२८ ॥

अर्थ- दूसरे यत्नशील और शंसितव्रत (दृढ़ संकल्पवाले) कर्मयोगी द्रव्य-यज्ञ करनेवाले, वैसे ही कई तप-यज्ञ करनेवाले, कई योग यज्ञ करनेवाले हैं और दूसरे कई स्वाध्याययज्ञ (वेदाध्ययन) और ज्ञानयज्ञ का अनुष्ठान करनेवाले हैं ॥२८॥

शास्त्रों में जो यज्ञ नहीं करता उसके लिए निंदा परक वाक्य भी उपस्थित है-

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितं च । अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतमश्रद्धया हुतमासप्तमान् तस्य लोकान् हिनस्ति ॥ ३ ॥ [mundak up. 1.2.3]

अर्थ - (यस्य) जिस का (अग्निहोत्रम्) अग्निहोत्र (अदर्शम्) दर्श अमावस्या के यज्ञ से रहित है (अपौर्णमासम्) और पूर्णमासी के यज्ञ से भी शून्य है। (अचातुर्मास्यम्) चातुर्मास्य सम्बन्धी यज्ञ से भी खाली है। (अनाग्रयणम्) आग्रयण शरद् ऋतु में विहित यज्ञ शून्य है (अतिथिवर्ज्जितम्) अतिथि यज्ञ वर्जित है। (अहुतम्) समय पर होम से रहित (अवैश्वदेवम्) वैश्वदेव कर्म से खाली है। (अविधिनाहुतम्) विधिरहित होम किया हुआ (अश्रद्धया, हुतम्) अथवा अश्रद्धा से किया हुआ है (तस्य) उसके (आसप्तमान् लोकान्) सात लोकों को (हिनस्ति) नाश करता है ॥ ३ ॥ १२ ॥

कुछ शोध ऐसे है- **Environmental Purification**: Studies have shown that the smoke produced by burning a mixture of ghee and sugar during Yajna can kill germs of certain diseases, thus purifying the atmosphere

लेकिन इससे वायु शुद्ध होती है ये कहना पूरी तरह से सही नहीं है क्योकि दहन से प्रदुषण होता है अर्थात इसमे O_2 खर्च होती है| यदि आप यज्ञ इसीलिए करते हो ताकि हवा में oxygen की मात्रा बढे और हवा शुद्ध हो तो आप algae लगाओ, यज्ञ मत करो

Scientists estimate that algae produce around 70% of the oxygen in the Earth's atmosphere [source]

4. ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्तुमर्हति राजन्यो द्वयस्यथ वैश्यो वैश्यस्यैवेति। शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके।

यह सुश्रुत के सूत्रस्थान के दूसरे अध्याय का वचन है। ब्राह्मण तीनों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय ओर वैश्य, क्षत्रिय; क्षत्रिय और वैश्य तथा वैश्य एक वैश्य वर्ण को यज्ञोपवीत कराके पढ़ा सकता है और जो कुलीन शुभलक्षणयुक्त शूद्र हो तो उस को मन्त्रसंहिता छोड़ के सब शास्त्र पढावे। शूद्र पढ़े परन्तु उस का उपनयन न करे यह मत अनेक आचार्यों का है।[sp3]

अनुशीलन- "शूद्र पढ़े परन्तु उस का उपनयन न करे यह मत अनेक आचार्यों का है" यह स्वामी जी का अपना वचन नहीं अपितु सुश्रुत के वचन में **"इत्येके"** पद का अर्थ है। [इत्येके(इति+एके)= यह मत अनेक आचार्यों का है] दयानंद द्वारा यह श्लोक देना क्या सिद्ध करता है क्या वे जातिवाद के समर्थक थे?

सुश्रुत का तो समझ में आता है पर स्वामी दयानंद का इसको अपने ग्रन्थ में प्रमाण रूप में लेना और इसका आगे खंडन न करना समझ नहीं आता।

ग्रन्थकार ने काशी में एक संस्कृत पाठशाला स्थापित की थी। जानता को इसकी जानकारी देने के लिए एक विज्ञापन प्रचारित किया था। यह विज्ञापन प्रथम बार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा सम्पादित तथा संचालित 'कविवचनसुधा' के आषाढ़ सुदी **६ शनि, संवत् १९३१, तदनुसार २० जून १८७४** के अंक में प्रकाशित हुआ था। वहाँ से 'बिहारबन्धु' भाग २, अंक २१, आषाढ़ सुदी १४, संवत् १९३१, तदनुसार २८ जून १८७४ में प्रकाशित हुआ। 'बिहारबन्धु' से पं० लेखरामजी ने लिया

"एक समाचार सबको विदित हो कि आपका आर्यविद्यालय काशी में संवत् १९३० पौष मास तदनुसार दिसम्बर सन् १८७३ में केदारघाट पर जिसका आरम्भ हुआ था, वही अब मित्रपुर भैरवी मोहल्ला, मिश्र दुर्गाप्रसाद के स्थान में संवत् १९३१ मिति आषाढ़ सुदी ५ शुक्रवार, १९ जून सन् १८७४ प्रातः काल ७ बजे के उपरान्त आरम्भ होगा। इसका प्रबन्ध सब अच्छे प्रकार होगा। इसमें अध्यापक गणेश श्रोत्रिय होंगे। सो पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, पातञ्जल, सांख्य, वेदान्तदर्शन, ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक दश उपनिषद्, मनुस्मृति, कात्यायन और पारस्करकृत गृह्यसूत्र, इनको पढ़ाया जाएगा। थोड़े समय के पीछे चार वेद, चार उपवेद तथा ज्योतिष के ग्रन्थ पढ़ाये जाएँगे और एक उपवैयाकरण रहेगा। वह अष्टाध्यायी, धातुपाठगण, उणादिगण, शिक्षा और प्रातिपदिक गणपाठ – ये पाँच पाणिनिमुनिकृत और पतञ्जलिमुनिकृतभाष्य, पिङ्गलमुनिकृत छन्दोग्रन्थ, यास्कमुनिकृत निरुक्त, निघण्टु और काव्यालङ्कार सूत्रभाष्य इन सबको पढ़ना होगा। **जिनको पढ़ने की इच्छा होवे, सो आकर पढ़ें। इसमें**

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सब पढ़ेंगे वेदपर्यन्त और शूद्र मन्त्रभाग को छोड़के सब शास्त्र पढेंगे"। [ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, तृतीय संस्करण, भाग १, पृष्ठ ३४-३५,,, satyarth bhaskar]

महर्षि दयानंद का इस प्रकार का कहा जाना उनके अपने ही वक्तव्यों में विरोध प्रकट करता है। प्रश्न उठता है- जब उनकी यह मान्यता थी की शुद्र वेद नहीं पढ़ सकते तो अन्य जगह इसका प्रतिपादन क्यों किया?

"*सब स्त्रियों और पुरुषों अर्थात् मनुष्यमात्र को [वेद] पढ़ने का अधिकार है। और तुम कुए में पड़ो।* और यह 'श्रुति' तुम्हारी कपोलकल्पना से हुई है, किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं। और सब मनुष्यों के वेदों के पढ़ने-सुनने के अधिकार का प्रमाण 'यजुर्वेद' के छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मन्त्र है*"

"*क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता ? **क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों के पढ़ने- सुनने का शूद्रों के लिये निषेध ओर द्विजों के लिये विधि करे?** जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने-सुनाने का न होता, तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र-इन्द्रिय क्यों रचता"*[sp3]

आगे यहाँ तक कह दिया की जो शुद्रो को वेद पढ़ना नहीं मानेगा वो नास्तिक होगा। परन्तु अन्यत्र विरोध क्यों किया? यह मीमांसा का विषय है।

"यह अंश विवेच्य है। शूद्र के प्रति यह भेदभाव क्यों? सबके समान योग्यता प्राप्त तथा सकल शास्त्र निष्णात होने पर भी केवल शूद्र होने के कारण वेदाध्ययन पर प्रतिबन्ध और वह भी ऋषि दयानन्द की पाठशाला में इसका कारण अन्वेषणीय है"[सत्यार्थ भास्कर, स्वामी विद्यानंद सरस्वती]

स्वामी विद्यानंद सरस्वती ने ऐसा कहा की कुछ समय तक ऋषि दयानंद ने पंडो के साथ समझौता कर लिया था क्योकि यदि वो शुद्रो को अपनी पाठशाला में वेद पढाते तो पण्डे लोग अधिक विरोध करते। ***"शूद्रों को वेद पढ़ाने के लिए तैयार होकर पौराणिक जगत् का विरोध सहने का साहस कौन करता ? हो सकता है, ऐसी स्थिति में ग्रन्थकार ने अपना काम निकालने--पाठशाला चलाने के लिए पण्डितों से यह समझौता किया हो, 'अच्छा भाई ! वेद को छोड़कर शेष सब तो सबको पढ़ाओ'"***[सत्यार्थ भास्कर, स्वामी विद्यानंद सरस्वती]

यह बात कुछ हजम नहीं होती जो व्यक्ति काशी में खड़ा होकर के जो कि मूर्ति पूजा की नगरी है। मूर्ति पूजा के विरुद्ध कह सकता है कहने का साहस रखता है, यह जानते हुए भी कि यहाँ पर हमसे मारपीट हो सकती है, फिर भी सत्य बोलने से नहीं डरता। वो ऐसा क्यों करेगा? चलो पाठशाला में किया भी परन्तु सत्यार्थ प्रकाश में अवश्य ही सुश्रुत के इस वचन का खंडन करना चाहिये था वैसे आगे इसी समुल्लास में शुद्रो का वेद अध्ययन माना है। आप भी सोच रहे होंगे की ऐसी दोहरी बातें क्यों लिखी है? दयानन्द वास्तव में क्या

मानते थे? विद्वानों के अनुसार बात ऐसी है कि दयानंद सरस्वती नहीं चाहते थे कि यहाँ के शुद्र समुदाय के लोग हिंदू धर्म को छोड़कर के इस्लाम और इसाईयत में जाए। यहाँ हिंदुओं में शुद्रो के साथ जातिवाद होता था, भेदभाव होता था और वो इससे परेशान थे। दयानंद को ये भय था कि भेदभाव और जातिवाद के कारण शुद्रलोग इस्लाम कबूल कर सकते हैं या हिंदू धर्म को छोड़ सकते हैं या उनकी आस्था वेदों में कम हो सकती है| इसलिए उन्होंने ये कहना आरंभ कर दिया है कि शुद्र वह अन्य वर्णों के सामान ही है, वो भी कर्म से ब्राह्मण बन सकता है। लेकिन परंपरा तो यही है कि ब्राह्मण आदि वर्ण जन्म से होते हैं, कर्म से नहीं होते। स्वामी जी के खुद के व्यक्तिगत जीवन देखा जाए तो स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि स्वामी जी स्वयं शूद्र के हाथ का खाना नहीं खाते थे।

धात्रीकर्म घर की स्त्रियां स्वयं करें, सन्तान पर इससे उत्तम संस्कार पड़ेंगे—लडके लडकी के उत्पन्न होते समय जो इस देश में नीच जाति की स्त्रियां उत्तम घरों में जाकर नाड़ीछेदन और धात्री का काम करती हैं और उसके मुख मे उंगलियां डालती हैं, यह बहुत बुरी बात है। घर की स्त्रियों को चाहिए कि वह स्वयं करें जिनसे उसकी बुद्धि तीव्र होगी। ऋतुगामी होने को उचित बतलाते थे।

"नीच जाती की स्त्री, ब्राह्मण आदि उतम द्विज के घर मे जाकर धायी का कार्य न करे यह बहुत बुरी बात है। यदि नीच जाती की स्त्री धात्री कार्य करेगी तो बच्चे मंदबुद्धि हो जायेंगे। अत: घर की महिलाओ को ही खुद से करना चाहिए।" [जीवनी लेखराम]

१७२ जीवनचरित्र महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

ग्रहण और असत्य का परित्याग कर दूसरों को कराके आप आनन्द में रहना, औरों को आनन्द में रखना।

दूसरा विज्ञापन

स्वामी जी को छः पुरुषों की अपेक्षा है ॥ एक—वेद, वेदांग, निघंटु, निरुक्त, व्याकरण, मीमांसादि शास्त्रों में निपुण, शुद्ध लिखने, पूर्वापर शब्द अर्थ और सम्बन्ध के विचार से शुद्धाशुद्ध को जानके शुद्ध करने और भाषा के व्याकरण की रीति से संस्कृत की भाषा को सुन्दर रचना करने वाला विद्वान्। दूसरा—व्याकरण में निपुण, लिखने में शीघ्रकारी; पूर्वोक्त रीति से संस्कृत की ठीक-ठीक भाषा की रचना करने हारा। तीसरा—शुद्ध लेखक शीघ्र लिखने वाला। चौथा—ब्राह्मण रसोई बनाने में अति चतुर। पांचवां—चतुर सेवक कहार काछी कुर्मी वा किसान। और छठा—नागरी, इंगलिश और उर्दू भाषाओं का लिखने-पढ़ने वाला हो। इन छः पुरुषों को जैसी-जैसी योग्यता अपने-अपने काम में होगी उसको मासिक भी वैसा ही दिया और उससे यथायोग्य काम लिया जायेगा।

जिस किसी को ऐसा करना अपेक्षित हो वह उक्त स्थान पर जाकर स्वामी जी से मिलकर प्रबन्ध कर लेवे।

महर्षि जी भोजन ब्राह्मण के हाथ का बना हुआ ग्रहण करते थे तथा उनको सेवक कुर्मी व किसान(शुद्र) चाहिए थे इसके हेतु स्वामी जी ने विज्ञापन छपवाया था| [जीवनी लेखराम]

5. वे सन्तान आप ही आप अखण्डित ब्रह्मचर्य सेवन से तीसरे उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करके पूर्ण अर्थात् चार सौ वर्ष पर्यन्त आयु को बढ़ावें[sp3][rigvedbhashyabhumika,ved sangya vichar]

अनुशीलन- 'चार सौ वर्ष पर्यन्त आयु को बढ़ावें' मैने जितना इस पर जहाँ भी जो भी खोजा है ४०० वर्ष मनुष्य की आयु होना संभव नहीं है। शास्त्रों में मनुष्य 100 वर्ष तक जिए, यह बहुत जगह कहा गया है।[**शतायुर्वें पुरुष** --ऐतरेय ब्राह्मण/ **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः**-यजु४०.२/ "इस लोकमें अग्निहोत्रादि कर्म करते हुए ही सौतक अर्थात् सौ वर्षों- तक जीने की इच्छा करे। पुरुषकी बड़ी से बड़ी आयु इतनी ही बतलायी गयी है।;-शंकरभाष्य "**शत च जीवामि शरदः पुरूचीः**- यजु० ३५॥१५] इससे मनुष्य की सामान्य आयु का ज्ञान करना चाहिए।

छान्दोग्य(3.16.1-7) के प्रमाण से स्वामी दयानंद ने ४०० वर्ष की आयु का होना लिखा है, जबकि वहाँ कही भी ४०० वर्ष की आयु का वर्णन नहीं आया है।

6. (**प्रश्न**) विवाह का समय और प्रकार कौन सा अच्छा है?

(**उत्तर**) सोलहवें वर्ष से लेके चोबीसवें वर्ष तक कन्या और २५ पच्चीसवें वर्ष से ले के ४८वें वर्ष तक पुरुष का विवाह समय उत्तम है। इस में जो सोलह और पच्चीस में विवाह करे तो निकृष्ट; अठारह बीस वर्ष की स्त्री तथा तीस पैंतीस वा चालीस वर्ष के पुरुष का मध्यम; **चौबीस वर्ष की स्त्री और अड़तालीस वर्ष के पुरुष का विवाह उत्तम है।** जिस देश में इसी प्रकार विवाह की विधि श्रेष्ठ और ब्रह्मचर्य विद्याभ्यास अधिक होता है वह देश सुखी और जिस देश में ब्रह्मचर्य , विद्याग्रहणरहित बाल्यावस्था और अयोग्यों का विवाह होता है वह देश दुःख में डूब जाता है। क्योंकि ब्रह्मचर्य विद्या के ग्रहणपूर्वक विवाह के सुधार ही से सब बातों का सुधार और बिगड़ने से बिगाड़ हो जाता है।

अनुशीलन- तुम अपनी २४ वर्ष की बहन अथवा पुत्री का विवाह ४८ वर्ष के पुरुष से करोगे चाहे वो कितना भी बड़ा ब्रह्मचारी हो? बात यह नहीं की वो ब्रह्मचारी है और जवान है। आयु का अंतर बहुत ज्यादा है। बहुत ज्यादा क्या पुरुष स्त्री के उम्र का दुगुना है, पूरा २४ वर्ष का अंतर है। अधिक से अधिक विवाह में पुरुष और स्त्री का अंतर ७ से ८ वर्ष होना चाहिए। आप खुद सोचो यदि किसी पुरुष का विवाह २३ अथवा २४ वर्ष में हो तो जब वह पुरुष ४८ वर्ष का होगा तब उसकी लगभग २४ वर्ष की पुत्री हो जाएगी। ४८, २४ पिता पुत्री का अनुपात है। इसीलिए इसको विवाह का नियम बनाना उचित नहीं है। "**चौबीस वर्ष की स्त्री और अड़तालीस वर्ष के पुरुष का विवाह उत्तम है।;** पता नहीं स्वामी जी ने इस प्रकार के विवाह को उत्तम क्या सोच के लिखा है? समाजियों को दूसरो के सामने इसको सही सिद्ध करने से पहले अपने घर की २४ वर्ष की बहन बेटियों का विवाह ४८ वर्ष के पुरुष से करना चाहिए तब आकर दुनिया के सामने इसको सही बोले। आर्य समाजी स्वयं कितना स्वामी दयानंद का अनुसरण करते है, इसका प्रमाण तो देना ही होगा। विवाह तो विवाह होता है, इसमे उत्तम, मध्यम और निम्न कैसा? क्या आर्य समाजियों के अनुसार श्री राम ने निकृष्ट विवाह किया था? २० वर्ष की स्त्री का विवाह ४० वर्ष के पुरुष से जो करता है वह मध्यम है। समाजी लोग इसका अनुसरण करे तब दुसरे लोगो को ज्ञान दे|

तुम तो अपने आप को बड़े तार्किक कहते हो और शास्त्रों की तो दुहाई देना ही मत की शास्त्रों में लिखा हुआ है इसीलिए मानते हैं, क्योंकि शास्त्रों को तुम अपने हिसाब से मानते हो।जो तुमको ठीक लगता है उसको मानते हो, इस तुमको ठीक नहीं लगता उसको मिलावट बोलते हो| अपनी पुत्री की उम्र की स्त्री से विवाह करते लज्जा आनी चाहिए| यदि शास्त्रों में लिखा भी हुआ है तो तुम तो उसे आसानी से मिलावट बोल सकते थे। लेकिन तुमने यहाँ मिलावट नहीं बोला

7. पुरुष वीर्य्यस्थापन और स्त्री वीर्याकर्षण की जो विधि है उसी के अनुसार दोनों करें। **जहां तक बने वहां तक ब्रह्मचर्य के वीर्य्य को व्यर्थ न जाने दें क्योंकि उस वीर्य्य वा रज से जो शरीर उत्पन्न होता है** वह अपूर्व उत्तम सन्तान होता है। **जब वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री और पुरुष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्नचित्त रहें, डिगें नहीं।** पुरुष अपने शरीर को ढीला छोडे और स्त्री वीर्य्यप्राप्ति समय अपान वायु को ऊपर खींचे , **योनि को ऊपर संकोच कर वीर्य्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थित करे।** पश्चात् दोनों शुद्ध जल से स्नान करें।'[sp4]

अनुशीलन-

- **जहां तक बने वहां तक ब्रह्मचर्य के वीर्य्य को व्यर्थ न जाने दें क्योंकि उस वीर्य्य वा रज से जो शरीर उत्पन्न होता है वह अपूर्व उत्तम सन्तान होता है।**

ये फालतू बात है। वीर्य कहीं शरीर में जमा नहीं होता है। एक सीमा से अधिक हो जाने पर वह स्वयं ही नष्ट हो जाता है, इसलिए उसको जमा करके रखने का कोई मतलब नहीं बनता। शायद स्वामी दयानन्द को ये बात पता नहीं होगी क्योंकि आयुर्वेद में यह बात नहीं लिखी है।

- जब वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री और पुरुष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्नचित्त रहें, **डिगें नहीं।**

यहाँ जो sex के समय का पोज़ीशन बताया जा रहा है। सामान्य रूप से ऐसा हो ही जाता है। मुख के सामने मुख नासिका के सामने नासिका आनी सामान्य बात है।

स्वामी जी ने यहाँ पर एक sex पोजिशन बताया और आगे लिखा कि **'डिगे नहीं'**। एक पोज़ीशन बताना सामान्य बात है, कोई बड़ी बात नहीं, लेकिन जैसे ही आगे ये बोल दिया **'डिगे नहीं'(हिले नहीं)**। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे यदि कोई व्यक्ति यहाँ से हिल गया, तो पता नहीं क्या अनर्थ हो जायेगा आप भी सोच रहे होंगे की ये लिखना आवश्यक नहीं था। तो उसको जानने के लिए स्वामी जी का एक वेदभाष्य देखें।

मुखँ सदस्य शिरऽइत्सतेन जिह्वा पवित्रमश्विनासन्त्सरस्वती। चप्यन्न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी॥[यजुर्वेद - अध्याय » 19; मन्त्र » 88]

पदार्थ- हे मनुष्यो! जैसे (जिह्वा) जिससे रस ग्रहण किया जाता है, वह (सरस्वती) वाणी के समान स्त्री (अस्य) इस पति के (सतेन) सुन्दर अवयवों से विभक्त शिर के साथ (शिरः) शिर करे तथा (आसन्) मुख

के समीप (पवित्रम्) पवित्र (मुखम्) मुख करे। इसी प्रकार (अश्विना) गृहाश्रम के व्यवहाँर में व्याप्त स्त्री-पुरुष दोनों (इत्) ही वर्त्तें तथा जो (अस्य) इस रोग से (पायुः) रक्षक (भिषक्) वैद्य और (वालः) बालक के (न) समान (वस्तिः) वास करने का हेतु पुरुष (शेपः) उपस्थेन्द्रिय को (हरसा) बल से (तरस्वी) करनेहारा होता है, वह (चप्यम्) शान्ति करने के (न) समान (सत्) वर्त्तमान में सन्तानोत्पत्ति का हेतु होवे, उस सब को यथावत् करे॥८८॥

भावार्थ- स्त्री-पुरुष गर्भाधान के समय में परस्पर मिल कर प्रेम से पूरित होकर मुख के साथ मुख, आंख के साथ आंख, मन के साथ मन, शरीर के साथ शरीर का अनुसंधान करके गर्भ को धारण करें, जिससे कुरूप वा वक्राङ्ग सन्तान न होवे॥८८॥

यहाँ से यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि स्वामी जी द्वारा बताए गए sex पोज़ीशन से थोड़ा भी हिले तो स्वामी जी के अनुसार वक्रांग और कुरूप संतान पैदा होगी।

कितने लोग है की स्वामी जी के अनुसार sex पोजीशन का ध्यान रखते हुए sex करते है? उस अवस्था से तनिक भी नहीं हिलते। शायद दुनिया में १% भी ऐसे लोग नहीं और कितने लोग वक्रांग और कुरूप होते है? इस हिसाब से तो सारे लोग कुरूप होने चाहिए परन्तु ऐसा नहीं होता। यहाँ प्रमाण देना आवश्यक भी नहीं। क्योकि कोई ऐसा शोध नहीं जो इसको सत्य सिद्ध करता हो। वास्तव में फर्टिलिटी का sex position से कोई लेना देना ही नहीं है।

“Here's the myth-busting truth. No particular sex position has been proven to improve the odds of pregnancy” [source- Sex Positions and Chances of Conception (webmd.com)]

No certain positions during sex have been proven to increase likelihood of conception. [Source-Sex for Pregnancy: Tips, Positions, Frequency, Timing, and More (healthline.com)]

इसमे तो प्रमाण देने वाली भी कोई विशेष बात नहीं सामान्य रूप से bio का थोडा बहुत ज्ञान रखने वाला इसको समझ सकता है।

- पुरुष अपने शरीर को ढीला छोडे और स्त्री वीर्य्यप्राप्ति समय अपान वायु को ऊपर खींचे , **योनि को ऊपर संकोच कर वीर्य्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थित करे।**

Pregnancy के लिए ये करना कोई आवश्यक नहीं है। कोई योनि का संकोच करने की आवश्यकता नहीं है और अन्य क्रियाकलाप करने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। दुनिया में इतने सारे लोग बच्चे पैदा करते है, शायद कोई भी इस विधि का पालन नहीं करता फिर भी बच्चे उत्तम पैदा होते ही है। जिसको ये करना है करे इसमे कोई दोष भी नहीं है। परन्तु एक अच्छे संतान के लिए ये सब कुछ आवश्यक नहीं है।

8. (प्रश्न) जो मुक्ति से भी जीव फिर आता है तो वह कितने समय तक मुक्ति में रहता हे?

(उत्तर) **ते ब्रहलोके ह परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे।[mundak up 3.2.6]** यह मुण्डक उपनिषत् का वचन हे। = वे मुक्त जीव मुक्ति में प्राप्त होके ब्रह्म में आनन्द को तब तक भोग के पुनः महाकल्प के पश्चात् मुक्ति सुख को छोड़ के संसार में आते हैं। इसकी संख्या यह है कि तेंतालीस लाख बीस सहस्त्र वर्षो की एक चतुर्युगी, दो सहस्त्र चतुर्युगीयों का एक अहोरात्र, ऐसे तीस अहोरात्रों का एक महोना, ऐसे बारह का एक वर्ष, ऐसे शत वर्षों का परान्तकाल होता है। इसको गणित की रीति से यथावत् समझ लीजिए। इतना समय मुक्ति में सुख भोगने का है।[sp9]

अनुशीलन- प्रथम तो इस मंत्र का स्वामी जी ने जो अर्थ किया है वह अर्थ नहीं है, यह केवल खींचतानी है। जो ये परांतकाल का समय बता रहे हैं। वह काल कहीं नहीं लिखा हुआ यह केवल इनके मन की कल्पना है। समाजी आज तक इसका प्रमाण देने में असमर्थ है|

9. जो पूर्वजन्म में किए हुए पाप पुण्य के फलों को भोग करने के स्वभावयुक्त जीवात्मा है, वह पूर्व शरीर को छोड़ के वायु के साथ रहता है, पुनः जल ओषधि वा प्राण आदि में प्रवेश करके वीर्य में प्रवेश करता है, तदनन्तर योनि अर्थात् गर्भाशय में स्थिर होके पुनः जन्म लेता है ।[rigvedaidibhashybhumika]

अनुशीलन- आत्मा sperm में होती है यह मान्यता फर्जी है। संदीप आर्य(आर्य समाजी) ने इसका खंडन अपने video में किया है। अब तो बिना वीर्य के भी बच्चा हो जाता है तो अब क्या समाजी हर एक कोशिका में आत्मा मानेंगे Somatic Cell Nuclear Transfer - an overview | ScienceDirect Topics

इन प्रमाणों से भी आत्मा का sperm में मानना मुर्खतापूर्ण और हास्यस्पद है। Do sperm have souls? What is the meaning of this? Does a man keep roaming around with sperm in his testicles? What poor, useless things. Meaning, nothing wrong will happen if you say something stupid.

10. ऐसा पदार्थ उस की माता वा धायी खावे कि जिस से दूध में भी उत्तम गुण प्राप्त हों। **प्रसूता का दूध छः दिन तक बालक को पिलावे। पश्चात् धायी पिलाया करे परन्तु धायी को उत्तम पदार्थों का खान पान माता-पिता करावें।** जो कोई दरिद्र हो, धायी को न रख सके तो वे गाय वा बकरी के दूध में उत्तम औषधि जो कि बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य करने हारी हों उनको शुद्ध जल में भेजा, औटा, छान के दूध के समान जल मिलाके बालक को पिलावें। जन्म के पश्चात् बालक और उसकी माता को दूसरे स्थान जहाँ का वायु शुद्ध हो वहां रक्खें सुगन्ध तथा दर्शनीय पदार्थ भी रक्खें और उस देश में भ्रमण कराना उचित है कि **जहां का वायु शुद्ध हो और जहां धायी, गाय, बकरी आदि का दूध न मिल सके वहां जैसा उचित समझें वैसा करें।** क्योंकि प्रसूता स्त्री के शरीर के अंश से बालक का शरीर होता है, इसी से स्त्री प्रसव समय निर्बल हो जाती है इसलिये प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे। **दूध रोकने के लिये स्तन के छिद्र पर उस ओषधी का लेप करे जिससे दूध स्रवित न हो। ऐसे करने से दूसरे महीने में पुनरपि युवती हो जाती है।**[sp2]

अनुशीलन-

- **प्रसूता का दूध छः दिन तक बालक को पिलावे। पश्चात् धायी पिलाया करे परन्तु धायी को उत्तम पदार्थों का खान पान माता-पिता करावें।**

प्रसूता अर्थात माता का दुध बच्चे के लिए अमृत है और जब माता को दूध हो रहा है, तो वो धायी क्यों बुलाये? ये स्वामी जी ने सामान्य नियम दिया है कुछ लोग इसे विशिष्ट नियम बताते है। स्वामी जी ने कहा जो कोई दरिद्र हो धायी न रख सके तो भी माँ का दूध न पिलाये, गाय और बकरी का दूध पिलाये इससे यही बात ज्ञात होती है की स्वामी जी ६ दिन के बाद बच्चे को अपनी ही माँ के दूध पिलाने के पक्ष में नहीं थे। **"जहां धायी, गाय, बकरी आदि का दूध न मिल सके वहां जैसा उचित समझें वैसा करें"** यहाँ हम यह अर्थ ले सकते है की इस स्थिति में माँ बच्चे को अपना दूध पिला सकती है। पर प्रश्न वही है जब माँ अपने बच्चे को अपना दूध पिला सकती है तो वो इतना प्रपंच क्यों करे? ये केवल बच्चे के पोषण की बात नहीं है, जब बच्चा माँ का दूध पीता है तो उसका माता के साथ एक भावनात्मक जुडाव भी होता है। माँ के ममत्व पर बच्चे का और बच्चे के प्रेम पर माँ का अधिकार है और ये प्रकृति द्वारा बनाया हुआ नियम है। अत: माँ को अपने बच्चे को दूध पिलाना चाहिए। जैसे एक माता अपने बच्चे का ख्याल रख सकती वैसे कोई नहीं रख सकता। यदि माता को दूध न हो उस स्थिति में वो धायी अथवा अन्य विकल्प देखती है। वह तो उस माता की विवशता है अन्यथा जिस माता को अपना स्वयं का दूध हो रहा हो वो तो खुद कभी अपने बच्चे को धायी आदि के पास नहीं जाने देगी चाहे वह स्त्री कितनी धनी क्यों न हो।

“इस प्रकार वेद के आधार पर ग्रन्थकार ने माता के द्वारा अपना दूध पिलाकर सन्तान का पालन-पोषण किये जाने के मन्तव्य का प्रतिपादन किया है। **सुश्रुतसंहिता में लिखा है---“यदि प्रमादवश जननी दूध न पिलाना चाहे तो उसे समझा-बुझाकर दूध पिलाने के लिए तैयार करे, क्योंकि 'मातुरेव पिबेत् स्तन्यं तत्परं बेहवृद्धये'-** अर्थात् जननी का दूध ही बालक के शरीर की पुष्टि के लिए सर्वोत्तम होता है।; वस्तुतः जिस शरीर के तत्त्वों से बालक के शरीर का निर्माण हुआ है, उससे निःसृत दूध बालक के लिए जितना अनुकूल एवं उपयोगी होगा वैसा अन्य कोई दूध (धाय, गाय, बकरी आदि का) नहीं हो सकता। फिर, जिस स्नेह से ममतामयी माँ बालक को दूध पिलाती है, वैसा स्नेह बालक को कहाँ से मिल सकता है ? और बालक को अपनी छाती से लगाकर दूध पिलाने में वह जिस तृप्ति व आनन्द का अनुभव करती है उससे वंचित होकर कौन माता सुखी होगी ? [सत्यार्थ भास्कर, स्वामी विद्यानंद सरस्वती]

माँ का दूध बच्चे के लिए अति महत्वपूर्ण

Breastmilk is the perfect food for your baby. It contains just the right amount of nutrients. It is also gentle on your baby's developing stomach, intestines, and other body systems. It is recommended that you breastfeed until your baby is 6 months old, then breastfeed with solid foods until at least 1 to 2 years old.[source- Breast Milk Is Best | Johns Hopkins Medicine]

Healthy nutrients

- Compared with formula, the nutrients in breastmilk are better absorbed and used by your baby. These include sugar (carbohydrate) and protein.
- Breastmilk has the nutrients that are best for your baby’s brain growth and nervous system development. Studies of breastfed babies have found that they do better on intelligence tests when they grow older.
- A breastfed baby's eyes also work better. This is mostly because of certain types of fat in breastmilk.

Preventing infections

- Breastmilk has many disease-fighting factors. They help prevent mild to severe infections and hospitalization.

- Breastfed babies have far fewer digestive, lung, and ear infections.
- Babies born early (premature) who are breastfed are also less likely to get a serious infection of the intestines called NEC (necrotizing enterocolitis).
- If your baby gets an infection when breastfeeding, the infection is likely to be

Preventing other conditions

Breastfeeding helps protects babies from many serious health problems. And it keeps on offering protection as they get older. Breastfed babies have:

- A lower risk for SIDS (sudden infant death syndrome) than babies who are not breastfed.
- A lower risk of getting asthma and skin problems related to allergies. Formula-fed babies are more likely to have milk allergies.
- Less diarrhea and a lowered chance of getting some digestive conditions. Formula can actually change healthy bacteria in a baby's intestines. The bacteria help with digestion and fighting disease.
- A lower risk of developing leukemia.
- Fewers long-term health problems as they grow up. These include diabetes and obesity.

Women who breastfeed also get many health benefits. If you breastfeed, you are more likely to lose the weight you gained during pregnancy. You are also less likely to get breast and ovarian cancer and diabetes later in life. [source- Breast Milk Is Best | Johns Hopkins Medicine]

The World Health Organization (WHO) recommends breastfeeding **until 2 years old or longer**Trusted Source because the benefits continue that long. These agencies recommend starting as early as one hour after birth for the biggest benefits. [source- 11 Benefits of Breastfeeding for Both Mom and Baby (healthline.com)]

अत: गाय भैस बकरी आदि से श्रेष्ठ दूध माँ का है। माँ को अपने बच्चे को अमृत तुल्य दूध अवश्य पिलाना चाहिया। दूध पिलाने से न ही बच्चे को जबकि माता को भी लाभ होता है।

- **दूध रोकने के लिये स्तन के छिद्र पर उस औषधी का लेप करे जिससे दूध स्रवित न हो। ऐसे करने से दूसरे महीने में पुनरपि युवती हो जाती है।**

माँ का दूध उसके अपने बच्चे के लिए प्रसुत होता है, जो माता में स्वाभाविक और प्राकृतिक है। माता उसको औषधि द्वारा क्यों रोके और ये कौन सा विज्ञान है की दूध रोकने से माँ दूसरे महीने पुन: युवती हो जाती है? कुछ लोग तर्क देते है की जो महिला बाहर कार्य करती है उनके लिए ऐसा कहा है। पहली बात यहाँ ऐसा कुछ नहीं लिखा यह बस सही सिद्ध करने का असफल प्रयास है। कोई महिला बाहर कार्य भी करती है तो वह २ महीने के बच्चे को छोड़कर जाएगी क्या? बच्चे को समय समय पर माँ की आवश्यकता होती है। उसे भूख लगती रहती है। उस समय बच्चे की आवश्यकता माँ ही पूरी कर सकती है। नए जन्म लिए बच्चे को पहले महीने ८-१२ बार माँ दिन में दूध पिलाती है।

11. **(प्रश्न)** मुक्ति एक जन्म में होती है वा अनेकों में ?

(उत्तर) अनेक जन्मों में। क्योंकि-

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया: । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे पराउवरे॥ १ ॥ -मुण्डक ॥

जब इस जीव के हृदय की अविद्या अज्ञानरूपी गांठ कट जाती, सब संशय छिन्न होते और दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हें तभी उस परमात्मा जो कि अपने आत्मा के भीतर और बाहर व्याप रहा है; उस में निवास करता है।

अनुशीलन- अनेक जन्मो में मुक्ति होती है। इससे ये तो सिद्ध है की ऋषि दयानंद सरस्वती एक जन्म में मुक्ति नहीं मानते। 'अनेक' शब्द से एक का निषेध है। अर्थात यहाँ काल का नियम लगाया गया है। दूसरी बात यह है की स्वामी जी मुण्डक उपनिषद का प्रमाण दे रहे है उसमे भी यह बात कही नहीं लिखी की मुक्ति अनेक जन्मो में होगी। इस प्रमाण से उनकी बात कैसे सिद्ध होती है ? **'जब इस जीव के हृदय की अविद्या अज्ञानरूपी गांठ कट जाती, सब संशय छिन्न होते और दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हें'** केवल इतने मात्र से यह कैसे निश्चय हो सकता है की यह कार्य एक जन्म में संपन्न नहीं हो सकता? क्योकि उपनिषद में कही भी काल का नियम नहीं लगाया गया है। हो सकता है की आपको को एक जन्म में मुक्ति प्राप्त करना असंभव लगे परन्तु यह कठिन है असंभव नहीं। दर्शन शास्त्र में मुक्ति के लिए किसी भी काल के नियम का निषेध किया है इसका अर्थ है की मुक्ति एक जन्म में भी हो सकती है अथवा ऐसा भी संभव है की अनेक जन्मो में भी न हो।

अधिकारित्रैविध्यान्न नियम: ॥ सांख्य१.७०॥

अर्थ- तीन प्रकार के अधिकारी (उत्तम, मध्यम और अधम या निकृष्ट) होने से मुक्ति में काल का कोई नियम नहीं है।

न कालनियमो वामदेववत्॥ सांख्य४.२०॥

अर्थ- वामदेव के समान कोई काल का नियम नहीं है।

"(कालनियमः=न वामदेववत्) विवेकसिद्धि में कालनियम नहीं है। किसी को शीघ्र, किसी को देर में, किसी को इसी जन्म में, किसी को अगले जन्म में विवेकसिद्धि होती है, **वामदेव की भांति। वामदेव को जैसे इसी जन्म में विवेकसिद्धि हो गई,** पूर्वजन्म में किए साधनानुष्ठान से। कहा है- **"तद्वैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदे अहं मनुरभवमहं सूर्यश्च"** (बृह० १ । ४। १९)=जैसे उस इसको देखते हुए, जानते हुए ऋषि वामदेव ने प्राप्त किया कि मैं मनु हुआ और वेदार्थप्रकाशक सूर्य ऋषि भी हुआ" [ब्रह्ममुनि भाष्य]

ऐतरेय उपनिषद २.१.१ – २.१.५ तक उचित व्याख्या

पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति। यदेततस्तदेतत् सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः सम्भूतमात्मन्येवात्मानं बिभर्ति तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैनज्जनयति तदस्य प्रथमं जन्म ॥ १ ॥

अर्थ- अयम्=यह; **ह**=निश्चयपूर्वक; **आदितः**=पहले-पहल; **पुरुषे**= पुरुष शरीर में; **वै**=ही; **गर्भः भवति**= भीतरी भाग में रहता है; **यत्**=जो; **एतत्** = यह ; **रेतः** = वीर्य है; **तत्**=वह; **एतत्** = यह; **सर्वेभ्यः** = सम्पूर्ण; **अङ्गेभ्यः**=अङ्गों से; **सम्भूतम्** - उत्पन्न हुआ; **तेजः**- तेज है; **आत्मानम्**=अपने ही स्वरूपभूत इस वीर्यमय तेज को; **आत्मनि**=अपने शरीर में; **एव**=ही; **बिभर्ति** = धारण करता है; (फिर) **यदा**=जब; (यह) **तत्** = उसको; **स्त्रियाम्**= स्त्री में; **सिञ्चति** = सिंचन करता है; **अथ** = तब; **एनत्** = इसको ; **जनयति**=गर्भरूपमें उत्पन्न करता है; **तत्** = वह; **अस्य** = इसका; **प्रथमम्**=पहला; **जन्म**=जन्म है॥१॥

तत्स्त्रिया आत्मभूतं गच्छति। यथा स्वमङ्गं तथा। तस्मादेनां न हिनस्ति। सास्यैतमात्मानमत्रगतं भावयति ॥ २ ॥

तत् = वह **स्त्रियाः** = स्त्रीके; **आत्मभूतम्** – आत्मभाव को; **गच्छति**= प्राप्त हो जाता है; **यथा**=जैसे; **स्वम्** = अपना; **अङ्गम्**=अङ्ग होता है; **तथा**=वैसे ही (हो जाता है); **तस्मात्** = इसी कारण से; **एनाम्** = इस स्त्री को; **न हिनस्ति**=वह पीड़ा नहीं देता; **सा**=वह स्त्री (माता); **अत्रगतम्** = यहाँ (अपने शरीरमें) आये हुए; **अस्य**= इसके; **आत्मानम्** = आत्मारूप; **एतम् भावयति**=इस गर्भका पालन-पोषण करती है॥२॥

सा भावयित्री भावयितव्या भवति। तं स्त्री गर्भं बिभर्ति। सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति। स यत्कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयत्यात्मानमेव तद्भावयत्येषां लोकानां संतत्या। एवं संतता हीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ॥ ३॥

अर्थ- सा भावयित्री भावयितव्या भवति = वह स्त्री गर्भ की रक्षा करती हुई रक्षणीय होती है।; **तम् गर्भम्** = उस गर्भको; **अग्रे**=प्रसव के पहले तक; **स्त्री** = स्त्री (माता); **बिभर्ति** = धारण करती है; **जन्मनः अधि**= जन्म लेने के बाद; **सः** = वह (उसका पिता); **अग्रे** =पहले; **एव**= ही; **कुमारम्** = उस कुमारको; **भावयति**= अभ्युदयशील बनाता तथा उसकी उन्नति करता है; **सः** = वह (पिता); **यत्**= जो; **जन्मनः अधि**=जन्म लेनेके बाद; **अग्रे** = पहले ही; **कुमारम् भावयति**=बालक की उन्नति करता है; **तत्** = वह (मानो); **एषाम्** = इन; **लोकानाम्**= लोकों को (मनुष्यों को); **संतत्या** = बढ़ाने के द्वारा ; **आत्मानम् एव भावयति** = अपनी ही उन्नति करता है; **हि** = क्योंकि; **एवम्** = इसी प्रकार; **इमे**=ये सब; **लोकाः**= लोक (मनुष्य); **संतता :** = विस्तारको प्राप्त हुए हैं; **तत्** = वह; **अस्य** =इसका; **द्वितीयम्** = दूसरा जन्म है ॥ ३ ॥

सोऽस्यायमात्मा पुण्येभ्यः प्रतिधीयते । अथास्यायमितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति । स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयंजन्म॥४॥

अर्थ- सः=वह (पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ); **अयम्** = यह; **आत्मा** = (पिताका ही) आत्मा; **अस्य**=इस पिता के (द्वारा आचरणीय); **पुण्येभ्यः** -= शुभकर्मोंके लिये; **प्रतिधीयते** = उसका प्रतिनिधि होता है: **अथ**= उसके अनन्तरः **अस्य**= इस (पुत्र) का; **अयम्**=यह (पितारूप); **इतर**= दूसरा; **आत्मा**=आत्मा; **कृतकृत्यः**= अपना कर्तव्य पूरा करके; **वयोगतः**=आयु पूरी होने पर; **प्रैति**=मरकर (यहाँसे) चला जाता है; **सः** = वह; **इतः** = यहाँ से; **प्रयन्**=जाकर; **एव** = ही; **पुनः** = पुनः; **जायते**=उत्पन्न हो जाता है; **तत्** = वह; **अस्य** = इसका ; **तृतीयम्**= तीसरा; **जन्म** = जन्म है॥४॥

व्याख्या- वह बच्चा जिसका जन्म हुआ है, वह माता पिता के लिए शुभ कर्म करने वाला होता है। उसका प्रतिनिधि होता है क्योकि वह माता पिता का अंश है। संतान का जन्म होता है, वह अपने कर्तव्यो को पूरा करके वृद्ध हो कर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। यदि मुक्ति न हुई तो पुनर्जन्म की प्रक्रिया कर्मानुसार आगे चलती रहती है। बच्चे के जन्म से लेकर मृत्यु तक की आयु बच्चे का तीसरा जन्म है।

तदुक्तमृषिणा-गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा । शतं मा पुर आयसीररक्षन्नधः श्येनो जवसा निरदीयमिति। गर्भ एव शयानो वामदेव एवमुवाच ॥ ५ ॥

अर्थ- (तत्, उक्तम्, ऋषिणा) ऐसा ही ऋषि ने कहा है- **(नु अहम् गर्भे, सन्, एषाम्, देवानाम्, विश्वा, जनिमानि, अनु, अवेदम्)** मैंने गर्भ में रहते हुए ही, इन देवों के समस्त जन्मों को जाना है। **(मा, शतम्, आयसी, पुरः, अरक्षन्, अधः,श्येनः, जवसा, निरदीयम्, इति)** लोहे के समान सौ पुरों ने मुझे रक्षित रखा अब मैं बाज पक्षी के समान वेग से निकल आया हूँ। **(गर्भे, एव शयानः वामदेवः एवम्, उवाच)** गर्भ ही में सोए हुए वामदेव ने इस प्रकार कहा ॥ ५ ॥

स एवं विद्वान्नस्माच्छरीरभेदादूर्ध्वमुत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान्कामानान्त्वाऽमृतः समभवत्समभवत् ॥ ६ ॥

अर्थ- (सः, एवम्, विद्वान्, अस्मात्, शरीरभेदात्, ऊर्ध्वम्, उत्क्रम्य, अमुष्मिन्, स्वर्गेलोके, सर्वान्, कामानाप्त्वाऽमृतः, समभवत्, समभवत्) वह विद्वान् (वामदेव) इस प्रकार शरीर छोड़कर ऊपर उठकर, उस स्वर्ग-लोक में समस्त कामनाओं को पाकर अमर हो गया[मोक्ष को प्राप्त हो गया] ॥ ६ ॥

इस प्रकार ऋषि वामदेव का एक ही जन्म में मोक्ष हो गया। दूसरा जन्म हुआ परन्तु मुक्ति पहले जन्म के फलस्वरूप गर्भकाल में प्राप्त हुई।

अधिकारिप्रभेदान्न नियमः ॥ सांख्य३.७६॥

अर्थ- अधिकारी में भेद होने से मुक्ति में कोई काल का नियम नहीं है।; मुक्ति प्राप्त करने में योग्यता का भेद है अधिक योग्य व्यक्ति का जल्दी ही मोक्ष हो जाता है। किसी का एक जन्म में ही मोक्ष हो जाता है। किसी को अनेक जन्म लेने पड़ते है, इसीलिए मुक्ति प्राप्त करने में कोई काल का नियम नहीं है।

12. (**प्रश्न**) जब वंशच्छेदन हो जाय तब भी उस का कुल नष्ट हो जायगा और स्त्री पुरुष व्यभिचारादि कर्म कर के गर्भपातनादि बहुत दुष्ट कर्म करेंगे इसलिये पुनर्विवाह होना अच्छा है।
(**उत्तर**) नहीं-नहीं क्योंकि जो स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य में स्थिर रहना चाहें तो कोई भी उपद्रव न होगा और जो कुल की परम्परा रखने के लिये किसी अपने स्वजाति का लड़का गोद ले लेंगे उस से कुल चलेगा और व्यभिचार भी न होगा और जो ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर ले

अनुशीलन- 'स्वजाति' से अर्थ यहाँ स्ववर्ण है। अपने ही वर्ण का बच्चा गोद ले अन्य वर्णों का नहीं। स्वजाति से मनुष्य जाती अर्थ नहीं हो सकता क्योकि मनुष्य बन्दर के बच्चे को तो गोद लेगा नहीं। ऐसा लिखने का क्या प्रयोजन है? ब्राह्मण, शुद्र अथवा वैश्य वर्ण के बच्चे को गोद क्यों नहीं ले सकता? आप बच्चे अनाथ आश्रम से ही गोद लोगे। अनाथ आश्रम में कौन सा बच्चा किस वर्ण का यह ज्ञान कैसे संभव है? बच्चे सगे संबंधियों से भी गोद लिए जाते हैं परन्तु वो तो स्वर्ण का ही होगा। क्योंकि दयानंद सरस्वती ने ब्राह्मण का, क्षत्रिय का, वैश्य का, शुद्र का, स्ववर्ण की स्त्रियों से विवाह माना है। अर्थात ब्राह्मण कुल में लोग ब्राह्मण ही बने रहे। यहाँ पर जो स्ववर्ण का बच्चा गोद लिया जा रहा है, यह सगे संबंधियों की बात नहीं। और अनाथ आश्रम का विकल्प तो है ही। क्या वहाँ के बच्चे को कोई गोद नहीं लेगा? वहाँ वर्ण का निर्धारण कैसे संभव है? वहाँ आप जाकर बच्चे का वर्ण पूछोगे क्या? जब समाजीजातिवाद मानते ही नहीं फिर यह सब लिखना निष्प्रयोजन ही है। जो संतान को गोद लेना चाहे तो किसी भी बच्चे को गोद ले ले। आप जैसा संस्कार दोगे वैसा उस बच्चे का चरित्र निर्माण होगा।

- **ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर ले[अन्यत्र** गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष से, वा दीर्घरोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जाय तो किसी से नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति करदे]

यद्यपि ब्रह्मचर्य का अर्थ बहुत विस्तृत है, परन्तु यहाँ ग्रंथकार ने ब्रह्मचर्य शब्द कामभाव के अर्थ में लिया है। **'ब्रह्मचर्य न रख सकें'** अपने काम भाव को काबू न कर सके तो नियोग कर संतान उत्पत्ति कर दे। नियोग तो उपकार भावना से की जाती है काम की संतुष्टि के लिए नहीं। इसकी क्या गारंटी है की एक बार नियोग करने के बाद उसमे दुबारा काम भाव नहीं जागेगा तो क्या वो उसकी शांति के लिए नियोग करता रहे। यह बेहूदा नियम है। विशेष रूप से काम की तृप्ति के लिए नियोग करना ठीक नहीं है। इस आपातकालीन नियम को सामान्य करना व्यभिचार ही है। [जो नियोग की व्यवस्था को छोड़कर कामवशीभूत हो सम्भोग करते हैं, वे दोनों पुत्रवधु-सम्भोग तथा गुरुपत्नी-सम्भोग के पापभागी होकर

पतित हो जाते हैं। मनु 9.63] उसको अवश्य ही अपने इन्द्रियों पर संयम रखना चाहिए। गुरुकुल में ब्रह्मचर्य का क्या अभ्यास किया उसका जीवन में कोई प्रयोग है अथवा नहीं?

13. (प्रश्न) नियोग अपने वर्ण में होना चाहिये वा अन्य वर्णों के साथ भी?
(उत्तर) अपने वर्ण में वा अपने से उत्तमवर्णस्थ पुरुष के साथ अर्थात् वैश्या स्त्री वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण के साथ; क्षत्रिया क्षत्रिय और ब्राह्मण के साथ; ब्राह्मणी ब्राह्मण के साथ नियोग कर सकती है। इसका तात्पर्य यह है कि वीर्य सम वा उत्तम वर्ण का चाहिये, अपने से नीचे वर्ण का नहीं। स्त्री और पुरुष की सृष्टि का यही प्रयोजन है कि धर्म से अर्थात् वेदोक्त रीति से विवाह वा नियोग से सन्तानोत्पत्ति करना।

अनुशीलन- अपने ही वर्ण में नियोग क्यों? ग्रंथकार ने लिखा है की **'वीर्य सम वा उत्तम वर्ण का चाहिये'** वीर्य उत्तम वर्ण का ही चाहिए ऐसा क्यों? जबकि ऋषि दयानंद ने स्वयं रज वीर्य से ब्राह्मण आदि शरीर होने का निषेध किया है। फिर उत्तम वर्ण के वीर्य में ऐसा क्या विशिष्ट है? यह जातिवाद मनुस्मृति में भी लिखा है परन्तु सपिंड में नियोग करने को कहा है।[मनु 9.५९], विस्तृत विवेचना 'दयानंद और विधवा विवाह' विषय p139 में किया गया है।

14. (प्रश्न) यदि किसी का छोटा भाई ही न हो तो विधवा नियोग किसके साथ करे? [मनु9.५९]

(उत्तर) देवर के साथ, परन्तु देवर शब्द का अर्थ जेसा तुम समझे हो वैसा नहीं। देखो निरुक्त में- **देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते।** -निरु० अ० ३। खण्ड १५॥ देवर उस को कहते हैं कि जो विधवा का दूसरा पति होता है, चाहे छोटा भाई वा बड़ा भाई, अथवा अपने वर्ण वा अपने से उत्तम वर्ण वाला हो, जिस से नियोग करे उसी का नाम देवर है।[sp4]

अनुशीलन - नियोग के समय अपने घर को छोर दूसरा पुरुष ही खोजना चाहिए। छोटे या बड़े भाई से नियोग करना ठीक नहीं। आप कितना भी नियम बना लो कुछ भी कर लो देवर का भाभी के साथ जो सम्मान पूवर्क रिश्ता होता है, वह नियोग के बाद समाप्त हो जायेगा। एक ही घर में वे दोनों एक दूसरे से नजर कैसे मिलायेंगे। भाभी का सम्मान माँ के तुल्य ही होता है। भाभी और देवर के बिच मर्यादा अवश्य ही होनी चाहिए तब सम्बन्ध बच पायेगा। नियोग पक्ष में विस्तृत विवेचना 'दयानंद और विधवा विवाह' विषय में किया गया है। अब तो ivf आ गया इस दशा में भी यही नियम लागु होता है। अब तो नियोग की कोई आवश्यकता ही नहीं रह गई।

15.(**प्रश्न**) स्त्री और पुरुष का बहु विवाह होना योग्य है वा नहीं?

(**उत्तर**) युगपत् न अर्थात् एक समय में नहीं।

(**प्रश्न**) क्या समयान्तर में अनेक विवाह होने चाहियें?

(**उत्तर**) हां जैसे-

या स्त्री त्वक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्यागतापि वा। पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति॥ मनु०॥

जिस स्त्री वा पुरुष का पाणिग्रहणमात्र संस्कार हुआ हो और संयोग न हुआ हो अर्थात् अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष हो, उनका अन्य स्त्री वा पुरुष के साथ पुनर्विवाह होना चाहिये। किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में क्षतयोनि स्त्री क्षतवीर्य पुरुष का पुनर्विवाह न होना चाहिये।[sp4]

अनुशीलन- अक्षत योनि अक्षत वीर्य का ही पुनर्विवाह हो परन्तु प्रश्न है यह है की आप कैसे यह पता करोगे की कौन अक्षत योनि है और कौन नहीं? सामने वाला व्यक्ति सत्य बोलने के लिए बाध्य तो नहीं है। विवाह के बाद क्षत योनि वाली महिला पति के मर जाने के पश्चात् दूसरा विवाह करने के लिए अपने आप को अक्षत कह सकती है। इसीलिए इसका पहचान करना लगभग असंभव है। और पुराने समय में तो असंभव ही था।

शास्त्रों में विधवा के लिए पुनर्विवाह का स्पष्ट उपदेश है

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि । हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥

ऋग्वेद - मण्डल » 10; सूक्त » 18; मन्त्र » 8

अर्थ- (नारि) हे विधवा नारि ! तू (एतं गतासुम्) इस मृत को छोड़कर (जीवलोकम्-अभ्येहि) जीवित पति को प्राप्त हो (हस्तग्राभस्य दिधिषोः पत्युः-तव-इदं जनित्वम्-उदीर्ष्व) विवाह में जिसने तेरा हाथ पकड़ा था, उस पति की और अपनी सन्तान को उत्पन्न कर (अभि संबभूथ) तू इस प्रकार सुखसम्पन्न हो ॥८॥

हे नारि त्वं गतासुं गतप्राणमेतं पतिमुपशेष उपेत्य शयनं करोषि । उदीर्ष्वास्मात्पतिस- मीपादुत्तिष्ठ । जीवलोकमभिजीवन्तं प्राणिसमूहमभिलक्ष्यैहि आगच्छ । त्वं हतस्तग्राभस्य पाणिग्राहवतो दिधिषोः पुनर्विवाहेच्छोः पत्युरेतत् जनित्वम् जायात्वमभिसम्बभूवाऽऽभिमुख्येन सम्यक् प्राप्नुहि । - तैत्तिरीयारण्यक ६ । १ । १४

भाषार्थ - हे नारि ! तू इस मृतपति के पास लेटी है । इस पति के समीप से उठ । जीवित पुरुषों का विचार कर, आ और तू हाथ पकड़नेवाले पुनर्विवाह की इच्छा करनेवाले इस पति को जायाभाव (स्त्रीभाव) से अच्छी तरह प्राप्त हो ।

पुनर्विवाह तथा एक से अधिक स्त्री से विवाह का प्रमाण

राजा दशरथ की तीन पत्नी

यथा मनुर्महातेजा लोकस्य परिरक्षिता ।तथा दशरथो राजा लोकस्य परिरक्षिता ॥ ४ ॥

अर्थ - राजा दशरथ सम्पूर्ण प्रजा का सब ओर से ऐसा ही रक्षक है जैसा महातेजस्वी मनु अपनी प्रजा का परिरक्षक था ॥

सातेनेक्ष्वाकुनाथेन पुरीसुपरि रक्षिता । यथापुरस्तान्मनुनामानवेन्द्रेण धीमता ॥ २० ॥

अर्थ - जैसे पूर्वकाल में मानवेन्द्र मनु ने रक्षा की थी वैसे ही इक्ष्वाकुवंशीय राजा दशरथ उस पुरी की रक्षा कर रहा था ।

अतीत्यैकादशाहं तु नाम कर्म तथा करोत् । ज्येष्ठं रामं महात्मानं भरतं कैकेयी सुतम् ॥ १६ ॥ सौमित्रिं लक्ष्मणमिति शत्रुघ्नमपरं तथा । वसिष्ठः परमप्रीतो नामानि कुरुते तदा ॥ १७ ॥

अर्थ- ग्यारह दिन व्यतीत होने पर परमानन्दित वसिष्ठमुनि ने चारो भाइयों का नामकरण किया, कौसल्या के महाप्रतापी पुत्र का नाम राम, कैकेयी के पुत्र का नाम भरत और सुमित्रा के पुत्रों का नाम लक्ष्मण और शत्रुघ्न रखा ॥[रामायण बालकाण्ड]

राजा दशरथ की तीन पत्निया थी और कही भी पूरी रामायण में इसके लिए राजा दशरथ की कही निंदा नहीं की गई है।

तस्यां पुर्थ्यामयोध्यायां वेदवित्सर्वसंग्रहः । दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपद प्रियः ॥ १ ॥

अर्थ-उस अयोध्यापुरी में वेदज्ञ, सबका यथायोग्य मान करने वाला, दीर्घदर्शी, महातेजस्वी पुरवासी वा देशवासियों का प्रिय-

इक्ष्वाकूणामतिरथो यज्वा धर्मपरो वशी । महर्षि कल्पो राजर्षित्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ २ ॥

अर्थ - इक्ष्वाकु शीय महारथी, यज्ञशील, धर्मपरायण, सबको वश में रखने वाला महर्षियों के समान राजर्षि तीनों लोक में प्रसिद्ध-

बलवान्निहतामित्रो मित्रवान् विजितेन्द्रियः । धनैश्च संचयैश्चान्यैः शक्रवैश्रवणोपमः ॥३॥

अर्थ - पराक्रमी, शत्रुहन्ता, मित्रोंवाला, जितेन्द्रिय और धनधान्य के संचय में इन्द्र और कुबेर के समान है ॥ [रामायण बालकाण्ड]

अर्जुन की पत्नी चित्रांगदा [आदिपर्व, अध्याय 214]

तत्र सर्वाणि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।अभिगम्य महाबाहुरभ्यगच्छन्महीपतिम् ॥ १४ ॥

वहाँके सम्पूर्ण तीर्थों और पवित्र मन्दिरोंमें जानेके बाद महाबाहु अर्जुन मणिपूरनरेशके पास गये ॥ १४ ॥

मणिपूरेश्वरं राजन् धर्मज्ञं चित्रवाहनम् ।तस्य चित्राङ्गदा नाम दुहिता चारुदर्शना ॥ १५ ॥

राजन्! मणिपूरके स्वामी धर्मज्ञ चित्रवाहन थे। उनके चित्रांगदा नामवाली एक परम सुन्दरी कन्या थी ॥ १५ ॥

तां ददर्श पुरे तस्मिन् विचरन्तीं यदृच्छया ।दृष्ट्वा च तां वरारोहां चकमे चैत्रवाहनीम् ॥ १६ ॥

उस नगरमें विचरण करती हुई उस सुन्दर अंगोंवाली चित्रवाहनकुमारीको अकस्मात् देखकर अर्जुनके मनमें उसे प्राप्त करनेकी अभिलाषा हुई ॥ १६ ॥

अभिगम्य च राजानमवदत् स्वं प्रयोजनम् ।देहि मे खल्विमां राजन् क्षत्रियाय महात्मने ॥ १७ ॥

अतः राजासे मिलकर उन्होंने अपना अभिप्राय इस प्रकार बताया- 'महाराज ! मुझ महामनस्वी क्षत्रियको आप अपनी यह पुत्री प्रदान कर दीजिये' ॥ १७ ॥

तच्छ्रुत्वा त्वब्रवीद् राजा कस्य पुत्रोऽसि नाम किम् ।उवाच तं पाण्डवोऽहं कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ १८ ॥

यह सुनकर राजाने पूछा- -'आप किनके पुत्र हैं और आपका क्या नाम है ?' अर्जुनने उत्तर दिया, 'मैं महाराज पाण्डु तथा कुन्तीदेवीका पुत्र हूँ। मुझे लोग धनंजय कहते हैं' ॥ १८ ॥

स तथेति प्रतिज्ञाय तां कन्यां प्रतिगृह्य च ।उवास नगरे तस्मिंस्तिस्रः कुन्तीसुतः समाः ॥ २६ ॥

'तथास्तु' कहकर अर्जुनने वैसा ही करनेकी प्रतिज्ञा की और उस कन्याका पाणिग्रहण करके उन्होंने तीन वर्षोंतक उसके साथ उस नगरमें निवास किया ॥ २६ ॥

अर्जुन की पत्नी उलूपी[आदिपर्व, अध्याय 213]

साहं त्वामभिषेकार्थमवतीर्णं समुद्रगाम् ।दृष्ट्वैव पुरुषव्याघ्र कन्दर्पेणाभिमूर्च्छिता ॥ १९ ॥

नरश्रेष्ठ! जब आप स्नान करनेके लिये समुद्रगामिनी नदी गंगामें उतरे थे, उस समय आपको देखते ही मैं कामवेदनासे मूर्च्छित हो गयी थी ॥ १९ ॥

तां मामनङ्गग्लपितां त्वत्कृते कुरुनन्दन ।अनन्यां नन्दयस्वाद्य प्रदानेनात्मनोऽनघ ॥ २० ॥

निष्पाप कुरुनन्दन! मैं आपके ही लिये कामदेवके तापसे जली जा रही हूँ। मैंने आपके सिवा दूसरेको अपना हृदय अर्पण नहीं किया है। अतः मुझे आत्मदान देकर आनन्दित कीजिये ॥ २० ॥

साहं शरणमभ्येमि रोरवीमि च दुःखिता । याचे त्वां चाभिकामाहं तस्मात् कुरु मम प्रियम् । सत्वमात्मप्रदानेन सकामां कर्तुमर्हसि ॥ ३२ ॥

मैं भी यही आशा लेकर शरणमें आयी हूँ और बार-बार दुःखी होकर रोती-गिड़गिड़ाती हूँ। मैं आपके प्रति अनुरक्त हूँ और आपसे समागमकी याचना करती हूँ। अतः मेरा प्रिय मनोरथ पूर्ण कीजिये। मुझे आत्मदान देकर मेरी कामना सफल कीजिये ॥ ३२ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तु कौन्तेयः पन्नगेश्वरकन्यया ।कृतवांस्तत् तथा सर्वं धर्ममुद्दिश्य कारणम् ॥ ३३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं— जनमेजय ! नागराजकी कन्या उलूपीके ऐसा कहनेपर कुन्तीकुमार अर्जुनने धर्मको ही सामने रखकर वह सब कार्य पूर्ण किया ॥ ३३ ॥

स नागभवने रात्रिं तामुषित्वा प्रतापवान् ।उदितेऽभ्युत्थितः सूर्ये कौरव्यस्य निवेशनात् ॥ ३४ ॥

प्रतापी अर्जुनने नागराजके घरमें ही वह रात्रि व्यतीत की। फिर सूर्योदय होनेपर वे कौरव्यके भवनसे ऊपरको उठे ॥ ३४ ॥

कृष्ण की एक से अधिक पत्नी

कृष्ण की केवल एक पत्नी थी इसका कोई प्रमाण नहीं जबकि एक से अधिक पत्नी का उल्लेख अनेक जगह प्राप्त होता है। bankimchandra chatopadhyay ने भी कृष्ण की एक से अधिक पत्नी मानी है।

“महाभारत के प्रामाणिक अंश के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि रुक्मिणी के अतिरिक्त कृष्ण की अन्य कोई पत्नी नहीं थी। रुक्मिणी के पुत्र- पौत्र प्रादि का वर्णन मिलता है, रुक्मिणी के वंशज ही राज्य प्राप्त करते हैं। किसी अन्य रानी के विषय में ऐसा कोई वर्णन नहीं मिलता। अतः हमको यह सन्देह है कि रुक्मिणी के अतिरिक्त कृष्ण की कोई अन्य पत्नी भी थी। परन्तु उस युग में ऐसा संभव अवश्य था। पाण्डवों में से प्रत्येक के एक से अधिक पत्नियां थीं। देवव्रत भीष्म अपने कनिष्ठ भ्राता के लिए काशिराज की तीनों कन्याओ का हरण कर लाये थे”।

“कृष्ण के एक से अधिक विवाह नहीं हुए- इसका भी उल्लेख नहीं है। हमको भी विचार करने पर ऐसा कुछ मिला नहीं, जिसके अनुसार पुरुष के लिए एक से अधिक विवाह करना प्रत्येक स्थिति में अधर्म माना

जाय। यह तो निश्चय है कि सामान्य स्थिति में एक से अधिक विवाह धर्मानुमोदित नहीं है, किन्तु कुछ परिस्थितियां इसका अपवाद हैं"। [कृष्ण चरित्र, bankimchandra chatopadhyay]

विचित्रवीर्य की दो पत्नी[Adiparva, adhyay 102]

ताः सर्वगुणसम्पन्ना भ्राता भ्रात्रे यवीयसे। भीष्मो विचित्रवीर्याय प्रददौ विक्रमाहृताः॥ ५८॥

भाई भीष्मने अपने पराक्रमद्वारा हरकर लाई हुई उन सर्वसद्गुणसम्पन्न कन्याओंको अपने छोटे भाई विचित्रवीर्यके हाथमें दे दिया॥ ५८॥

विनिश्चित्य स धर्मज्ञो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।अनुजने तदा ज्येष्ठामम्बां काशिपतेः सुताम्॥ ६४॥

वे स्वयं भी धर्मके ज्ञाता थे, फिर भी वेदोंके पारंगत विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ भलीभाँति विचार करके उन्होंने काशिराजकी ज्येष्ठ पुत्री अम्बाको उस समय शाल्वके यहाँ जानेकी अनुमति दे दी॥ ६४॥

अम्बिकाम्बालिके भार्ये प्रादाद् भ्रात्रे यवीयसे। भीष्मो विचित्रवीर्याय विधिदृष्टेन कर्मणा॥ ६५॥

शेष दो कन्याओंका नाम अम्बिका और अम्बालिका था। उन्हें भीष्मजीने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार छोटे भाई विचित्रवीर्यको पत्नीरूपमें प्रदान किया॥ ६५॥

ऋषि याज्ञवल्क्य की दो पत्निया

मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्य उद्यास्यन्वा हस्त तेऽनया कात्यायन्यान्तं अरेऽहमस्मात्स्थानादस्मि करवाणीति॥ १॥[बृह० उपनिषद : २-४-१]

'अरी मैत्रेयी!' ऐसा याज्ञवल्क्यने कहा 'मैं इस स्थान (गार्हस्थ्य- आश्रम) से ऊपर (संन्यास - आश्रममें) जानेवाला हूँ। अतः [तेरी अनुमति लेता हूँ और चाहता हूँ] इस कात्यायनीके साथ तेरा बँटवारा कर दूँ'॥ १॥

अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवतुर्मैत्रेयी च कात्यायनी च तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव स्त्रीप्रज्ञेव तर्हि कात्यायन्यथ ह याज्ञवल्क्योऽन्यद् वृत्तमुपाकरिष्यन्॥ १॥[बृह० उपनिषद : ४-५-१]

यह प्रसिद्ध है कि याज्ञवल्क्यकी मैत्रेयी और कात्यायनी ये दो भार्याएँ थीं। उनमें मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी और कात्यायनी तो स्त्रियोंकी-सी बुद्धिवाली ही थी। तब याज्ञवल्क्यने दूसरे प्रकारकी चर्या प्रारम्भ करनेकी इच्छासे [कहा-]॥ १॥

दूसरा विवाह करने की आज्ञा

या रोगिणी स्यात्तु हिता सम्पन्ना चैव शीलतः । सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित् ॥ ८२ ॥

अर्थ- (या रोगिणी स्यात्) जो स्त्री स्थायी रोगिणी हो **(तु)** किन्तु **(हिता च शीलतः सम्पन्नाः)** पति की हितैषिणी और सुशील आचरण वाली हो **(सा+ अनुज्ञाप्य + अधिवेत्तव्या)** पति उससे अनुमति लेकर दूसरा विवाह कर ले **(च)** और **(कर्हिचित् न + अवमान्या)** उसकी कभी अवमानना न करे ॥ ८२ ॥ [Manusmriti 9.82]

द्वितीयपरिणयने हेतू नाह-सुरापी व्याधिता धूर्ता वन्ध्यार्थन्यप्रियंवदा ।स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा ॥ ७३ ॥[Yajnavalkya Smriti, aacharadhyay, vivah prakaran, p30]

भाषा—सुरापान करने वाली, दीर्घ रोग से ग्रस्त, धूर्त, बांझ, धन का नाश करने वाला, कठोर वचन बोलने वाली, पुत्रियों को ही जन्म देने वाली और पति का अहित करने वाली पत्नी के रहते हुए भी दूसरा विवाह कर लेना चाहिए ॥ ७३ ॥

अधिविन्ना तु भर्तव्या महदेनोऽन्यथा भवेत् ।यत्रानुकूल्यं दंपत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्धते ॥ ७४ ॥

भाषा — किन्तु उक्त दोषों वाली प्रथम विवाहिता पत्नी का भी पालन- पोषण करना चाहिए, अन्यथा घोर पाप होता है। जहां स्त्री पुरुष दोनों परस्पर अनुकूल होते हैं वहां धर्म, अर्थ और काम तीनों की प्रतिदिनं वृद्धि होती हैं ।। ७४ ।।[Yajnavalkya Smriti, aacharadhyay, vivah prakaran, p30]

प्राचीन काल में युद्ध अधिक होते थे। युद्ध में पुरुष ही अधिक मारे जाते थे। महिलाओ की संख्या पुरुष से अधिक होती थी। किसी एक राज्य की सभी महिलाये वहाँ के पुरुषो से विवाह करना चाहे तो एक पुरुष के एक से अधिक स्त्री हो ही जाएँगी। वह तो तब की बात थी और यह अपवाद स्वरूप ही है। स्मृति में भी प्रथम पत्नी की आज्ञा से दूसरा विवाह करे, लिखा है। कोई पत्नी नहीं चाहेगी की उसका पति दूसरे स्त्री के साथ विवाह करे। बहुत कम ऐसा होगा की पहली पत्नी अपने पति को दूसरा विवाह करने की आज्ञा दे। बिना अपनी पत्नी की आज्ञा के दूसरा विवाह करना पाप में ही आयेगा। इतिहास में भी एक से अधिक पत्नी का जहाँ भी वर्णन आया है वहाँ अन्यो की सहमती है, नहीं तो विरोध अवश्य ही देखने को मिलता। अत: सामान्य रूप से एकल पत्नी विधान ही उचित है। वेदों में एक पत्नी करने की आज्ञा है, अधिक नहीं। श्री राम ने अपने सम्पूर्ण जीवन काल में इसी मर्यादा को स्थापित किया है। उन्होंने ने कभी अन्य राजाओ की भांति अनेक विवाह नहीं किये।

16. (**प्रश्न**) सूर्य चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं और उनमें मनुष्यादि सृष्टि हे वा नहीं?

(**उत्तर**) ये सब भूगोल लोक और इनमें मनुष्यादि प्रजा भी रहती हैं क्योंकि- **एतेषु हीदश्सर्वं वसुहितमेते हीदशसर्वं वासयन्ते तद्यदिदसर्वं वासयन्ते तस्माद्ल्डसव इति॥ -शत० का० १४॥**

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य इन का वसु नाम इसलिये है कि इन्हीं में सब पदार्थ और प्रजा वसती हैं और ये ही सब को वसाते हैं। **जिस लिये वास के निवास करने के घर है, इसलिये इन का नाम वसु है। जब पृथिवी के समान सूर्य चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं पश्चात् उन में इसी प्रकार प्रजा के होने में क्या सन्देह?** और जैसे परमेश्वर का यह छोटा सा लोक मनुष्यादि सृष्टि से भरा हुआ है तो क्या ये सब लोक शून्य होंगे? परमेश्वर का कोई भी काम निष्प्रयोजन नहीं होता तो क्या इतने असंख्य लोकों में मनुष्यादि सृष्टि न हो तो सफल कभी हो सकता है? इसलिये सर्वत्र मनुष्यादि सृष्टि है।

अनुशीलन- किसी आकाशीय पिंड को वसु कहने के तीन कारण दिए है-

1. उनमे प्रजा(मनुष्य से लेकर सूक्ष्मजीव पर्यंत) बसती है इसलिए वसु है।
2. उन पिंडो के कारण अन्य व्यवस्था बनी रहती है अर्थात उनका प्रभाव किसी न किस पिंड पर पड़ता है। वह उनको धारण करते है, इसलिए वसु है। सूर्य पर भले ही जीवन न हो किन्तु सूर्य के बिना पृथ्वी पर जीवन की कल्पना कैसे की जा सकती है? इसीप्रकार चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों का भी हमारे सौरमंडल में कोई न कोई प्रभाव तथा उपयोग है। इसलिए इन्हें भी वसु कहते है।
3. उन पिंडो पर कुछ पदार्थ भी होंगे इस कारण भी उन्हें वसु कहा है।

अब प्रश्न पर ध्यान देना चाहिए। प्रश्न पदार्थ और प्रभाव के कारण वसु होने पर नहीं पूछा गया है। प्रश्न है **"सूर्य चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं और उनमें मनुष्यादि सृष्टि हे वा नहीं"** यहाँ **'मनुष्यादि' से** मनुष्य से लेकर सूक्ष्मजीव तक प्रजा का ग्रहण किया जा सकता है। परन्तु उत्तर में स्वामी दयानंद वसु को परिभाषित करते है तथा प्रभाव, पदार्थ तथा प्रजा के कारण आकाशीय पिंडो को वसु कहते है। प्रश्न के पहले भाग के कारण ऐसा उत्तर देना उचित है। सारी बात ठीक लिखते है, इस परिभाषा के अनुसार हम सूर्यादि लोको को वसु कह सकते है। परन्तु जहाँ संशय उत्पन्न होता है वह वाक्य है – **"जब पृथिवी के समान सूर्य चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं पश्चात् उन में इसी प्रकार प्रजा के होने में क्या सन्देह?"**

स्वामी जी ने वाक्य में ही प्रजा लिखकर स्पष्ट कर दिया है, अत: हम यहाँ पदार्थ और प्रभाव के कारण सूर्य चन्द्र आदि को वसु कहा है, ऐसा नहीं कह सकते। वह स्पष्ट लिख रहे है **पृथिवी के समान मनुष्य आदि प्रजा सूर्य आदि पर रहते है।**

17. यदि राजा राजपुरुषाश्च परस्त्रीवेश्यागमनाय पशुदद्वर्त्तन्ते, तान् सर्वे विद्वांस: शूद्रानिव जानन्ति यथा शूद्र आर्य्यकुले जारो भूत्वा सर्वान् **संकरयति**, तथा **ब्राह्मणक्षत्रियवेश्या: शूद्रकुले व्यभिचारं कृत्वा वर्णसंकरनिमित्ता भूत्वा नश्यन्ति॥** ३१॥

अर्थ-जो राजा और राजपुरुष परस्त्री, वेश्यागमन के लिए पशु के समान अपना वर्त्ताव करते हैं, उनको सब विद्वान शूद्र के समान जानते हैं। जैसे शूद्र मूर्खजन श्रेष्ठों के कुल में व्यभिचारी होकर सब को **वर्णसंकर** कर देता है, वैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शूद्रकुल में व्यभिचार करके **वर्णसंकर** के निमित्त होकर नाश को प्राप्त होते हैं॥ [दयानंदभाष्य यजुर्वेद२३.३१]

(क्षत्तृभ्य:) शूद्रात् क्षत्रियायां जातेभ्य:[संस्कृत]

अर्थ-क्षत्रिय की स्त्री में शूद्र से उत्पन्न हुए वर्णसंकर के लिये [हिंदी]

अनुशीलन- "**(क्षत्तृभ्य:)** शूद्रात् क्षत्रियायां जातेभ्य:" यहाँ वर्णसंकर शब्द संस्कृत में नहीं है लेकिन दो भिन्न वर्ण से उत्पन्न संतान को वर्णसंकर कहते है।[manusmriti 10.24] इसको स्वामी दयानंद जी ने माना है। (यजुर्वेद२३.३१= ब्राह्मण, क्षत्रिय और वेश्य शूद्रकुल में व्यभिचार करके **वर्णसंकर** के निमित्त होकर नाश को प्राप्त होते हैं; "**वर्णानां व्यभिचारेण**"- manusmriti 10.24)

"जैसे पुरुष जिस-जिस वर्ण के योग्य होता है वैसे ही स्त्रियों की भी व्यवस्था समझनी चाहिये। इससे क्या सिद्ध हुआ कि इस प्रकार होने से सब वर्ण अपने-अपने गुण, कर्म, स्वभावयुक्त होकर शुद्धता के साथ रहते हैं। अर्थात् ब्राह्मणकुल में कोई क्षत्रिय वैश्य और शूद्र के सदृश न रहे। और क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र वर्ण भी शुद्ध रहते है। **अर्थात वर्णसंकरता प्राप्त न होगी**। इससे किसी वर्ण की निन्दा वा अयोग्यता भी न होगी"[sp4]

"मनु ने यहां चार वर्णों की मान्यता अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में उद्घोषित की है। मनुस्मृति में अन्यत्र भी चार वर्णों का ही वर्णन है।चार वर्णों की दीक्षा से रहित अन्य सभी व्यक्ति दस्यु हैं [१०.४५], अन्य वर्णसंकर आदि संज्ञक कोई वर्ण या जाति नहीं है। इस श्लोक की पुष्टि के लिए मनुस्मृति के निम्न श्लोक भी द्रष्टव्य हैं-- १.३१, ८७-९१; ३.२०; ७५.५७; ७.६८; १०.४५, ६५, १३१; १२.९७ आदि। वर्णसंकरों की कल्पना जन्मना जातिवाद की है"[सुरेन्द्र कुमार,विशुद्ध मनुस्मृति,10.4, p550]

"दो विभिन्न वर्ण व्यक्तियों के सम्बन्ध से उत्पन्न सन्तान को 'वर्णसंकर ' कहते हैं," [सुरेन्द्र कुमार,विशुद्ध मनुस्मृति 8.353, p472]

"स्पष्ट है कि वर्णसंकरों का कथन मनु का प्रतिपाद्य ही नहीं है" [सुरेन्द्र कुमार,विशुद्ध मनुस्मृति १.२, p४]

सुरेन्द्र कुमार जी अपनी पुस्तक में स्पष्ट रूप से इस बात को कह रहे हैं कि वर्णसंकर शब्द जातिवाद की उपज है। अर्थात वर्णसंकर शब्द जन्मना जातिवाद के कारण उत्पन्न हुई। जिस समय कर्म के कारण वर्ण का निर्धारण होता था। उस समय वर्णसंकर जैसा कुछ शब्द था ही नहीं और मनु 'वर्णसंकर' को नहीं मानते या मनुके समय वर्णसंकर शब्द नहीं था। अब प्रश्न यह उठता है कि जब वर्णसंकर शब्द जातिवाद की उपज है, तो इस नवीन शब्द को ऋषि दयानंद सरस्वती वेद में क्यों लिख रहे हैं? वेद में वर्णसंकर शब्द का लिखना यह सिद्ध करता है, की दयानंद सरस्वती के मुताबिक वर्णसंकर शब्द प्राचीन है और उसका वर्णन वेदों में है। यहाँ पर स्पष्ट रूप से सुरेन्द्र कुमार ऋषि दयानंद के विरोधी दिखाई देते हैं।

18. -एक 'स्थूल' जो यह दीखता है। दूसरा पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच सूक्ष्म भूत और मन तथा बुद्धि इन सत्तरह तत्त्वों का समुदाय सूक्ष्मशरीर कहाता है।

अनुशीलन- स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक जो आर्य समाज में बहुत बड़े विद्वान हुए हैं। वेदभाष्यकार रह चूके हैं। उन्होंने अपने सांख्य दर्शन के भाष्य में स्वामी दयानन्द द्वारा कथित सूक्ष्म शरीर में 17 तत्व होते है इसका खंडन किया है। ब्रह्ममुनि परिव्राजक ने १८ तत्व की सिद्धि की है देखिये-

सप्तदशैकं लिङ्गम् ॥सांख्य दर्शन ३.९॥

भाष्य- अनिरुद्धवृत्ति में सूत्रार्थ अठारह पदार्थपरक है। वहां लिङ्ग शरीर अठारह पदार्थ वाला कहा है- **"सप्तदश च एकञ्च अष्टादश, तैः लिङ्गं सूक्ष्मदेहः उत्पद्यते बुद्ध्यहङ्कारमनांसि पञ्च सूक्ष्मभूतानि दश इन्द्रियाणीति'** (अनिरुद्धः) अर्थात् सतरह और एक अठारह उनके साथ लिङ्ग-सूक्ष्मदेह उत्पन्न होता है; वे हैं - बुद्धि, अहङ्कार, मन, पांच सूक्ष्म भूत, दश इन्द्रियां। विज्ञानभिक्षुभाष्य में अनिरुद्ध के अर्थ का खण्डन किया है—**"न तु सप्तदशमेकं चेत्यष्टादशतया व्याख्येयम्"** (विज्ञानभिक्षुः)। परन्तु विज्ञानभिक्षुभाष्य में भी पदार्थ तो वैसे ही सूक्ष्म शरीर के अठारह माने हैं, केवल अहङ्कार का बुद्धि में अन्तर्भाव दिखलाकर **"एकादशेन्द्रि- याणि पञ्च तन्मात्राणि बुद्धिश्चेति सप्तदश, अहङ्कारस्य बुद्धावेवान्तर्भावः'** (विज्ञानभिक्षुः) इस प्रकार कथन से क्या हुआ ? पदार्थ तो वही अठारह स्वीकार किये, परन्तु सरलता से नाक न पकड़ी वक्रता का आश्रय लेकर पीठ के पीछे से हाथ लाकर उलटे घुमाकर पकड़ी। अहङ्कार तो पच्चीस पदार्थगण में स्वतन्त्र पदार्थ गिना गया है, उसका कैसे बुद्धि में अन्तर्भाव कल्पित किया जा सकता है ? **अन्य स्वामी हरिप्रसाद आदि भाष्यकारों ने भी उसी प्रकार अठारह पदार्थों को अहङ्कार का बुद्धि में अन्तर्भाव करके सतरह माना है। यह कथनशैली सांख्यपरिगणन शैली और सूत्रपदों के विरुद्ध है।** तथा विज्ञानभिक्षुभाष्य में सूत्रस्थ 'एकम्' इस पद से 'सब का लिङ्गशरीर एक है' यह कहा, सो भी ठीक नहीं, क्योंकि चतुर्थ सूत्र 'आविवेकाच्च प्रवर्तनमविशेषाणाम्" [४] =विवेकपर्यन्त ही लिङ्ग शरीर ठहरता है, जिसके द्वारा जीवात्मा दूसरा स्थूल शरीर प्राप्त करने को गति करता है। तथा वेदान्त दर्शन में भी **"तदापीतेः संसारव्यपदेशात् "** (वेदान्त० ४। २। ८) = प्रत्येक का सूक्ष्म शरीर पृथक् है और वह जब तक मोक्ष न हो तब तक रहता है। अपितु उस सूक्ष्म शरीर के द्वारा जीवात्मा सुख-दुःख की अनुभूति करता है, यह अभी इसी अध्याय में सांख्यकार ने **"पूर्वोत्पत्तेस्तत्कार्यत्वं भोगादेकस्य नेतरस्य "** [८] आठवें सूत्र में कहा है।
इस प्रकार भोग सबके अलग-अलग हैं, सूक्ष्म शरीर भी अलग- अलग हैं। 'एक' लिङ्ग शरीर का कथन करना अयुक्त है। यहां सूत्र लिङ्ग शरीर के अठारह पदार्थ तो सब भाष्यकारों ने ही माने हैं। अहंकार का बुद्धि में अन्तर्भाव करके 'सतरह' कथनमात्र ही है। अतः सरलता का अवलम्बन कर सूत्रार्थ होना चाहिए, जो हमें अभीष्ट है। अब हम सूत्र का अर्थ करते हैं-

(सप्तदश) पांच तन्मात्राएं, ग्यारह इन्द्रियां [मन, ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां] अहङ्कार, **ये सतरह (एकं लिङ्गम्)** एक महत्तत्त्व-बुद्धि। लिङ्ग शब्द से महत्तत्त्व अभीष्ट है।[१७+१=१८] जैसे योगदर्शन में कहा है-**"विशेषा-विशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि"** (योग० २। १९)। **एकं लिङ्गम्'** यह पृथक्-पृथक् कथन क्यों किया ? क्यों नहीं **'अष्टादश'** ऐसा ही कह दिया ? उस लिङ्ग-महत्तत्त्व की प्रधानता के प्रदर्शनार्थ प्रयोग यह है कि यहां सूक्ष्मशरीर में प्रमुख 'लिङ्ग' है। उस को आश्रित करके ही यह लिङ्गशरीर कहा जाता है। जैसे पांच भूतों में सब से अधिक स्थूल पृथिवी 'प्रधान' है। पांच भूत स्थूल शरीर के निमित्त होते भी 'पार्थिव' कहा जाता है। उसकी स्थूलता में पृथिवी की प्रधानता से ऐसा कथन है। वैसे ही **'एकं लिङ्गम्'** इस प्रकार लिङ्ग की प्रधानता को आश्रितकर पृथक् कथन करना लिङ्ग शरीर की प्रसिद्धि के लिये है। और जो विज्ञानभिक्षुभाष्य में वचन उद्धृत किया है- **"कर्मात्मा पुरुषो योऽसौ बन्धमोक्षैः प्रयुज्यते। सप्तदशैकेनापि राशिना युज्यते च सः ॥"** कहां का वचन है, यह सूचित नहीं किया। वह प्रामाणिक शास्त्र का है या अप्रामाणिक ग्रन्थ का वचन है, यह ज्ञात नहीं होता। कदाचित् किसी नव्यग्रन्थ का वचन हो। तथापि इस वचन से विज्ञानभिक्षुभाष्य की पुष्टि नहीं होती। जैसा कि विज्ञानभिक्षु ने सूत्रार्थ को अन्यथा करते हुए लिङ्ग शरीर में अठारह पदार्थ संकलित किए हैं। किन्तु यहां भी सीधे शब्दों में **'सतरह'** अलग और एक अलग कहा है **'सप्तदशैकेन राशिना' सप्तदशक राशि सतरह पुनः 'कर्मात्मा पुरुषः**'=कर्मात्मा पुरुष अहङ्कारयुक्त जीव कहा है। **"निर्गुणत्वात् तदसम्भवादहङ्कारधर्मा ह्येते"** (सांख्य० ६। ६२) **"विशिष्ट जीवत्वम्"** (सांख्य० ६। ६३) = अहङ्कारविशिष्ट आत्मा जीव हुआ। फिर **"अहङ्कारकर्त्रधीना कार्यसिद्धिः"** (सांख्य० ६। ६४)=कर्तृत्व अहङ्कार का या अहङ्कारविशिष्ट आत्मा का होता है। ऐसे ही यहां उद्धृत वचन में भी **'कर्मात्मा पुरुषः'**=कर्मात्मा पुरुष अहङ्कार या अहङ्कारविशिष्ट आत्मा अभीष्ट है-'सप्तदशैक' राशि के साथ सङ्गत है। **तब 'सतरह' और 'एक' अठारह हो गए। इस प्रकार से लिंग देह के पदार्थों की संख्या अठारह तो हो ही गई।**

19. इस में जो विशेष देखना चाहें तो मेरी बनाई "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ' में देख लीजिये। **वहां अनेकशः प्रमाणों से विरुद्ध होने से यह कात्यायन का वचन नहीं हो सकता ऐसा ही सिद्ध किया गया है।**[sp7]

एक कात्यायन को छोड़कर किसी अन्य ऋषि ने उनके वेद होने में साक्षी नहीं दी है।[rigvedadi., vedsangyavichar]

और कात्यायन के नाम से जो दोनों की वेदसंज्ञा होने में वचन है, सो सहचार उपाधि लक्षणा से किया हो तो भी नहीं बन सकता। क्योंकि जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'उस लकड़ी को भोजन करा दो' और दूसरे ने इतने ही कहने से तुरन्त जान लिया कि लकड़ी जड़ पदार्थ होने से भोजन नहीं कर सकती, किन्तु जिस मनुष्य के हाथ में लकड़ी है उसको भोजन कराना चाहिए इस प्रकार से कहा हो तो भी मानने के योग्य नहीं हो सकता **क्योंकि इस में अन्य ऋषियों की एक भी साक्षी नहीं है।** [rigvedadi., vedsangyavichar]

अनुशीलन- प्रमाणों के विरुद्ध होने से कोई वचन गलत हो सकता है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि उस ऋषि ने वह वचन लिखा ही नहीं। अत: दयानंद सरस्वती का यह लिखना की "**वहां अनेकश: प्रमाणों से विरुद्ध होने से यह कात्यायन का वचन नहीं हो सकता**" ठीक नहीं है। क्योकि प्रमाण विरुद्ध होने से यह सिद्ध नहीं होता की ये वचन कात्यायन का नहीं है। कात्यायन ने **'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'** वचन नहीं पढ़ा इसके पक्ष में स्वामी दयानंद से अच्छे तो विद्यानंद जी के तर्क है-

"वस्तुत: कात्यायनश्रौतसूत्रों में यह वचन कहीं नहीं है। कात्यायन के नाम से प्रसिद्ध प्रतिज्ञापरिशिष्ट में यह अवश्य मिलता है। कात्यायन के नाम से प्रसिद्ध दो प्रतिज्ञापरिशिष्ट हैं-एक श्रौतसूत्र से सम्बद्ध और दूसरा प्रातिशाख्य से। उनमें से प्रातिशाख्य से सम्बद्ध परिशिष्ट में यह सूत्र मिलता है, श्रौतसूत्र से सम्बद्ध में नहीं। वस्तुतः इस परिशिष्ट का कात्यायनकृत होना ही सन्दिग्ध है। यदि यह कात्यायनसम्मत होता तो आपस्तम्ब आदि श्रौतसूत्रों के समान उनके श्रौतसूत्रसम्बद्ध परिशिष्ट में होता, न कि प्रातिशाख्यसम्बद्ध में। वहाँ न होने से प्रतीत होता है कि कात्यायन को ब्राह्मणों का वेदत्व इष्ट नहीं है"[satyarth Bhaskar,swami vidyanand]

लेकिन यहाँ पर बात ये है कि परिशिष्ट बोलकर तो आप कात्यायन श्रोतसूत्र, आपस्तम्ब श्रोतसूत्र से बच सकते हैं, लेकिन इसके अन्य भी प्रमाण है। जहाँ पर परिशिष्ट बोलकर नहीं भागा जा सकता है-

महर्षि बोधायन

मन्त्रब्राह्मणं वेद इत्याचक्षते।२।

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।३। [बौधायनगृह्यसूत्रम्, द्वितीयप्रश्ने षष्ठो ऽध्यायः]

महर्षि सत्याषाढः

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ।[श्रौतसूत्राणि, हिरण्यकेशिः/सत्याषाढः श्रौतसूत्रम्/प्रश्नः ०१]

महर्षि कौशिक

आम्नाय : पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च ।[कौशिक सूत्र १.3]

संभवतः इसीलिए पंडित युधिष्ठिर मीमांसक ने परिशिष्ट बोलकर समय नहीं गवाया क्योंकि उनको पता था कि ये वचन अन्य स्थान पर भी उपलब्ध है। इसीलिए युधिष्ठिर मीमांसक ने इन वचनों को अर्थात ब्राह्मण को वेद कहने वाले वचनों को परिभाषा प्रकरण में माना है। उन्होंने इसबात को भी स्वीकार किया है की ऋग आदि का मुख्य नाम वेद है परन्तु ब्राह्मण को भी गौण रूप से वेद कहा गया है।

"एक कात्यायन को छोड़कर किसी अन्य ऋषि ने उनके वेद होने में साक्षी नहीं दी है"...... "क्योंकि इस में अन्य ऋषियों की एक भी साक्षी नहीं है" यह बोलना झूठ है। क्योकि कात्यायन के अतिरिक्त भी अन्य ऋषियों के प्रमाण उपस्थित है।

20. जो योगी पुरुष तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान आदि योग के साधनों से योग (धारणा, ध्यान, समाधिरूप संयम) के बल को प्राप्त हो, **अनेक प्राणियों के शरीरों में प्रवेश करके, अनेक शिर, नेत्र आदि अंगो से देखने आदि कार्यों को कर सकता है, अनेक पदार्थों वा धनों का स्वामी भी हो सकता है, उसका हम लोगों को अवश्य सेवन करना चाहिये।**[दयानंदभाष्य, भावार्थ, यजुर्वेद १७.71]

अनुशीलन- अब इसका खंडन भी क्या करू। जो लोग इसको सत्य मानते हैं, भगवान उनकी बुद्धि का भला करें और जो लोग कहते हैं कि आर्य समाज में कोई चमत्कार नहीं होते तो ये देख लो योगी बनो और अपनी आत्मा किसी दूसरे के शरीर में डाल दो। उसके शरीर के मालिक हो जाओ, उसकी आंख से देखो, उसके धन के स्वामी हो जाओ। मतलब अगर कोई व्यक्ति योगी हो जाये तो वो अपनी आत्मा मुकेश अंबानी के शरीर में डाल करके उसके सारी संपत्ति का मालिक हो सकता है। मैं सोचता हूँ कि फिर प्राचीन काल में इतने युद्ध क्यों हुए होंगे? क्योंकि ऋषि तो थे ही जो व्यक्ति युद्ध करना चाहता उसके शरीर में घुस जाते और फिर वही करते जो वो चाहते हैं और युद्ध रुक जाता।

21. मूर्ति पूजा हजार हत्या के समान पाप-

प्रश्न १६ - रामलीला देखना दोष है ?

उत्तर- हां दोष है। हजार हत्या के समान दोष है। और इसी प्रकार मूर्तिपूजा करना हजार हत्या के समान है; क्योंकि बिना आकृति के प्रतिबिम्ब नहीं उतर सकता और जबकि उसकी आकृति नहीं तो मूर्ति कैसी? यदि किसी का फोटोग्राफ से या और किसी प्रकार यथार्थ प्रतिविम्ब उतार कर संस्मरण और देखने के लिये सम्मुख रखा जाये तो वह ठीक है परन्तु उसकी अर्थात् ब्रह्म की मूर्ति और आकृति बनाना और प्रतिलिपि की प्रतिक्षिपि बनाकर कुछ का कुछ कर देना नितान्त अशुद्ध और अनुचित है।[27 सितंबर से 1 नवंबर. अध्याय 7, लेखक :- देवेन्द्रनाथ जी, पुस्तक :- दयानन्द जी का जीवनी] [पत्र एवं विज्ञापन]

अनुशीलन- जो मूर्ति पूजा में बलि आदि देते है उसके लिए स्वामी जी अगर इस प्रकार का कथन करते तो ठीक भी था क्योंकि प्राणियों की हत्या से पाप तो लगता ही है। लेकिन जो सामान्य रूप से किसी मूर्ति की पूजा करता है, उससे 1000 हत्या का पाप कैसे लग सकता है? ये कैसा न्याय है और किस शास्त्र में लिखा है? मूर्ति पूजा से 1000 हत्या का पाप ये स्वामीजी सामान्य रूप से कह रहे हैं। यहाँ पर ऐसा नहीं है कि कोई मूर्तिपूजा में बलि दे रहा है तो उसके लिए कहा जा रहा है। यह सामान्य रूप से कह रहे हैं, जो भी मूर्ति पूजता है वह 1000 हत्या के समान पापी है। मूर्ति पूजा तो और, जो रामलीला भी देखता है, वह भी 1000 हत्या के समान पापी है। रामलीला में हो सकता है कि राम जी का मजाक बने। उस दृष्टि से बोला हो। परन्तु फिर भी 1000 हत्या? ऐसा नहीं है कि रामलीला में हर जगह राम जी का अपमान होता है लोगों के पास पहले टीवी नहीं था, मोबाइल फ़ोन नहीं थे। उतने लोग पुस्तक नहीं पढ़ते थे। लोग अनपढ़ थे वह पुस्तक कैसे पढ़ पाते। उनके लिए एक ऐसी प्रस्तुति करना है जहाँ पर राम, सीता, तथा रामायण के अन्य पात्रो का मंच पर प्रस्तुतीकरण हो रामायण के किसी भाग को मंच पर बड़े ही सुंदर तरीके से दिखाया गया हो इससे भी लोगो में रामायण का ज्ञान दिया जाता था रामकथा को जीवित रखने का यह एक स्वरूप था ऐसे ही हमारे पूर्वजों ने रामकथा को बना कर रखा है। समाज में इसको बचाकर रखा। बहुत लोग शिक्षा रहित थे अक्षर ज्ञान नहीं था परंतु राम जी की कथा का उनको ज्ञान अवश्य होता था। वो सब इन्हीं माध्यमों से जानते थे क्योंकि पहले इतना संचार का माध्यम नहीं था। आज लोग साक्षर अवश्य हो गए हैं। उनके हाथ में मोबाइल फ़ोन टीवी संचार के नए नए माध्यम है। फिर भी नए नए बच्चे आजकल रामजी उनके व्यक्तित्व के बारे में कुछ नहीं जानते। उनके इतिहास के बारे में कुछ नहीं जानते। रामानंद सागर ने जो रामायण बनाई वो भी एक नाटक ही है, वो भी एक राम लीला ही है अंतर इतना है की बस उसको रिकार्ड करके टीवी पर हमको दिखाया जाता है। क्या सब हजार हत्या के दोषी हो गए? जिन करोडो लोगो ने रामायण देखा वह भी हजार लोगो की हत्या के दोषी हो गए?

22. तार विद्या : वेदों में विज्ञान या वेदों का अपमान

(युवं पेदवे०) अभिप्रा० - इस मन्त्र से तारविद्या का मूल जाना जाता है। पृथिवी से उत्पन्न धातु तथा काष्ठादि के यन्त्र और विद्युत् अर्थात् बिजली इन दोनों के प्रयोग से तारविद्या सिद्ध होती है । क्योंकि **(द्यावापृथिव्योरित्येके)** इस निरुक्त के प्रमाण से इनका अश्वि नाम जान लेना चाहिए।

(पेदवे) अर्थात् वह अत्यन्त शीघ्र गमनागमन का हेतु होता है **(पुरुवारम्)** अर्थात् इस तारविद्या से बहुत उत्तम व्यवहारों के फलों को मनुष्य लोग प्राप्त होते हैं। **(स्पृधाम्)** अर्थात् लड़ाई करने वाले जो राजपुरुष हैं, उन के लिए यह तारविद्या अत्यन्त हितकारी है (श्वेत०) वह तार शुद्ध धातुओं का होना चाहिए। **(अभिद्युम्)** और विद्युत् प्रकाश से युक्त करना चाहिए **(पृतनासु दुष्टरम्)** सब सेनाओं के बीच में जिस का दुःसह प्रकाश होता और उल्लङ्घन करना अशक्य। **(चर्कृत्यम्)** जो सब क्रियाओं के वारंवार चलाने के लिये योग्य होता है। **(शय्यैः)** अनेक प्रकार कलाओं के चलाने से अनेक उत्तम व्यवहारों को सिद्ध करने के लिये, विद्युत् की उत्पत्ति करके उस को ताड़न करना चाहिए। **(तरुतारम्)** जो इस प्रकार का ताराख्य यन्त्र है, उस को सिद्ध करके, प्रीति से सेवन करो। किस प्रयोजन के लिए ? **(पेदवे)** परम उत्तम व्यवहारों की सिद्धि के लिये तथा दुष्ट शत्रुओं के पराजय और श्रेष्ठ पुरुषों के विजय के लिए तारविद्या सिद्ध करनी चाहिये। **(चर्षणीसहं०)** जो मनुष्यों की सेना के युद्धादि अनेक कार्यों के सहन करनेवाला है। **(इन्द्रमिव ०)** जैसे समीप और दूरस्थ पदार्थों का प्रकाश सूर्य करता है, वैसे तारयन्त्र से भी दूर और समीप के सब व्यवहारों का प्रकाश होता है। **(युवं दुवस्यथः)** यह तारयन्त्र पूर्वोक्त अश्वि के गुणों ही से सिद्ध होता है। इस को बड़े प्रयत्न से सिद्ध करके सेवन करना चाहिए। इस मन्त्र में पुरुषव्यत्यय पूर्वोक्त नियम से हुआ है, अर्थात् मध्यम पुरुष के स्थान में प्रथम पुरुष समझना चाहिए ॥१॥

अनुशीलन:- वैसे इस तार विद्या का खंडन सुरेंद्र कुमार अज्ञात द्वारा किया गया है। इसमें यह आवश्यक नहीं है कि सुरेंद्र कुमार किस मत से संबंध रखता है। आवश्यक यह है कि जो उसने तार विद्या के खंडन में तर्क व प्रमाण दिए हैं। वो कितना उचित है? एक बार उसको देखना चाहिए-

“वेदों के विज्ञान संबंधी विमर्श को समाप्त करने से पहले एक विषय की और चर्चा करना चाहूंगा. **यह विषय है-तार विद्या. तार विद्या के नाम से स्वामी दयानंद जी ने बिजली, बिजली के तार और टेलीग्राम (तार) सभी को वेदों से सिद्ध करना चाहा है**” [क्या बालू की भीत पर खड़ा है हिंदू धर्म, 284]

“इतना लंबा अर्थ पढ़ना सामान्य पाठक को अरुचिकर लग सकता है, **लेकिन इसे पढ़ कर यह बात अवश्य स्पष्ट हो जाएगी कि यह मंत्रार्थ कितनी खींचातानी का परिणाम है.**

'पेदवे' शब्द का दो बार अर्थ इस में लिखा गया है, लेकिन दोनों अर्थों का आपस में कोई संबंध नहीं. **'श्वेतम्'** का सीधा अर्थ होता है - सफेद, पर यहां अर्थ किया गया है - **"वह तार शुद्ध धातुओं का होना चाहिए.**

ऐसे ही **'तरुतार'** शब्द में **'तार'** शब्द देख कर इस का अर्थ कर दिया - **तार नामक यंत्र,** जब कि संस्कृत में तार शब्द का अर्थ धातु का बनाया सूत्र या धागा है, टेलीग्राम न कभी था और न अब है.

स्वामी दयानंद जी ने वैसे तो वेदों के मंत्रों के शब्दों के उन अर्थों को दृढ़तापूर्वक अस्वीकार किया है जो परंपरा से प्रसिद्ध थे, लेकिन यहां वेदों से तार विद्या सिद्ध करने के स्वार्थवश उन्होंने शब्दों के वे अर्थ स्वीकार कर लिए हैं जो न उन के द्वारा स्वीकृत यौगिक अर्थ हैं और न परंपरागत तार शब्द का अर्थ धातु का सूत्र या टेलीग्राम तो एकदेशी अर्थ है. **इस तरह की शाब्दिक कलाबाजियों से वेदों से विज्ञान नहीं निकल सकता**"[क्या बालू की भीत पर खड़ा है हिंदू धर्म, 284]

इससे पहले की आर्य समाजी लीपापोती कर के तार का अर्थ ही बदल दे, यहाँ तार का अर्थ 'Taar', the telegram service है। स्वामी विद्यानंद ने भी telegram कहा है- **"इंग्लैण्ड में पहली बार १८६२ में तार द्वारा समाचार भेजा गया था। भारत में इसके बहुत बाद तार का प्रचलनं हुआ"** [भूमिका भास्कर]

विद्यानंद जी की ये बात भी गलत है, शायद उनको जानकारी का अभाव हो "On May 24, 1844, the first message, **"What hath God wrought?"** was sent. The telegraph system progressed slowly, and many attempts failed to make the system work for the entire country. Morse slowly continued to spread his invention and he extended the telegraph line to New York."[source]

"उस समय (१८७६) तक ग्रन्थकार को इसकी कोई जानकारी नहीं रही होगी। इसलिए यहाँ उन्होंने जो कुछ लिखा है, साक्षात् वेद के आधार पर ही लिखा है" [भूमिका भास्कर]

यहाँ पर तो स्वामी विद्यानंद जी भी संशय में हैं। लिख रहे हैं कि ग्रंथकार को इसकी कोई जानकारी नहीं 'रही होगी'। यहाँ पर **'रही होगी'** पद पर ध्यान देना चाहिए। वो चाहते हैं तो ये भी लिख सकते थे कि उस समय तक ग्रंथकार को इसकी कोई जानकारी न थी। लेकिन **'रही होगी'** पद से यह ज्ञात होता है की वह भी इसमें स्पष्ट नहीं, शायद स्वामी विद्यानंद यहाँ पर संशय में है। संभव है कि स्वामी दयानंद को जानकारी हो भी। संभव है कि स्वामी दयानंद को जानकारी नहीं थी। तो इसीलिए उन्होंने यहाँ पर संशय रूपी वाक्य लिखा है। आगे लिखते हैं -यहाँ उन्होंने जो कुछ लिखा वेद के आधार पर लिखा है। जब तार विद्या की जानकारी स्वामी दयानंद को थी अथवा नहीं थी, यही विवादास्पद है, तो फिर किस आधार पर यह वाक्य लिखा? आप इतने दावे के साथ कैसे कह सकते है की तार विद्या स्वामी दयानंद ने वेद के आधार पर लिखा?

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका लिखने से पहले स्वामी दयानंद को तार विद्या का ज्ञान अवश्य था

In 1854, First Telegram Was Sent In India. it was April 27, 1854 when the first telegram was sent from Mumbai to Pune.[source]

इन दिनों भारत में टेलीग्राम का उपयोग बहुत ही सामान्य हो चुका था। पंडित लोग भागवत कथा सुनने के लिए भागवत कथा में लोगों को बुलवाने के लिए, पंडितों को तार भेजा करते थे इसका वर्णन स्वयं स्वामीजी के जीवन चरित्र में आया है।

"महाराजा ग्वालियर की ओर से भागवत सप्ताह की तैयारी - पण्डित गंगाप्रसाद शुक्ल तथा जमनाप्रसाद शुक्ल, ग्वालियर निवासी ने वर्णन किया कि तारीख २ नवम्बर, सन् १८६४ तदनुसार कार्तिक शुदि तीज, संवत् १९२१ शुक्रवार को श्रीमान् महाराजा जियाजी राव सिन्धिया आलीजाह बहादुर के दरबार में (देवकी झांकी ?) सर्व सरदार मंडली और गोविन्द बाबा और नाना ज्योतिषी को बुलाया गया। श्रीमद्भागवत सप्ताह का मुहूर्त पूछा गया। बुद्धिमान् और माननीय और योग्य ज्योतिषियों ने मीनमेख विचार और अश्विनी भरणी की गणना करके माघ शुदि नवमी, शनिवार (२५ माघ संक्रान्त) तदनुसार **४ फरवरी, सन् १८६५** का मुहूर्त निकाला कि इस शुभ दिवस में कथा का आरम्भ किया जाय। **इस शुभ मुहूर्त की सभी देश देशान्तरों में तार द्वारा योग्य पण्डितों की सूचना दी गई। लश्कर से कुछ रईस भी भेजे गये।** काशी, पूना, सितारा, अहमदाबाद, हैदराबाद, नासिक आदि से ऐसे पंडित बुलाये गये कि खड़े होकर हरिकथा कहें। दूर दूर से लोग आने प्रारम्भ हो गये और इधर महाराजा साहब की ओर से बड़ी धूमधाम से तैयारियां होने लगीं। अतिथिसत्कार करने में कोई कमी शेष नहीं छोड़ी गई। आये लोगों का स्वागत बडे मान-सम्मान से आदर सत्कार पूर्वक होने लगा। [लेखराम जीवन चरित्र, p63]............ उससे पहले २४ जनवरी सन् १८६५ को श्रीमान् स्वामी दयानन्द महाराज ग्वालियर में आकर भागवत का खंडन करने लगे

इस समय तार विद्या इतना सामान्य होने के बाद भी स्वामी विद्यानंद का ये लिखना- हो सकता है कि दयानंद सरस्वती को तार विद्या का ज्ञान न हो। दयानंद सरस्वती की प्रति उनकी भक्ति दिखाती है। क्योंकि सत्य तो कुछ और ही है। भारत में पंडितो को तार विद्या का ज्ञान १८६५ से पहले ही था। स्वामी जी ने **ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका** १८७६ में लिखना आरंभ किया।

"अयोध्या में वेदभाष्य लिखना आरम्भ किया-शुक्रवार, १८ अगस्त, सन् १८७६ तदनुसार भादों बदि १४ को अयोध्या पहुंच कर सरयू बाग में, चौधरी गुरुचरणलाल के मंदिर में, जहां पाठशाला है, उतरे और वहीं दो दिन पश्चात् अर्थात् भादों शुक्ल प्रतिपदा रविवार संवत् १९३३ तदनुसार **२० अगस्त सन १८७६ को**

वेदभाष्य भूमिका (ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका) का लेखन आरम्भ किया। यहां स्वामी जी एक मास, ९ दिन रहे अर्थात् २४ सितम्बर ६६, १८७६ तक यहां रहे”[लेखराम जीवन चरित्र, p276]

इन सब प्रमाणों से यह बात सिद्ध है कि स्वामी जी को तार विद्या का ज्ञान **ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका** लिखने से पहले ही था। और इसी विद्या को उन्होंने वेदों में लिखने का प्रयास किया। लोग यह समझें कि वेदों में विज्ञान है। यह लीपापोती करके आप कुछ समय के लिए तो वेदों में विज्ञान सिद्ध कर दोगे। लेकिन जब ये भांडा फूटेगा तो जिन लोगों की वेदों में आस्था थी, जो लोग विज्ञान देखकर ही वेदों के पास आये थे। वे सब नास्तिकता की ओर चले जाएंगे।

23. वेद से विज्ञान निकालने की परम्परा

वेदों से विज्ञान निकालने में संभवतः प्रथम स्थान स्वामी दयानंद सरस्वती को ही प्राप्त है। इसलिए बालू की भीत में सुरेन्द्रकुमार अज्ञात ने लिखा है- **"इसीलिए वेदों से विज्ञान निकालने वालों के आदि आचार्य स्वामी दयानंद जी ने इस से किसी राकेट को सिद्ध करने की कोशिश नहीं की। वैसे इस का कारण यह भी हो सकता है कि उन दिनों राकेट नाम की कोई चीज थी ही नहीं. होती तो शायद वे इस मंत्र का अर्थ और तरह से करते"** यही से प्रेरणा लेते हुए कुछ विद्वानों ने वेदों के वैज्ञानिक अर्थ करने का प्रयास किया है-

वरुण:= हाइड्रोजन,

अप्सरा:= बिजली.

वसिष्ठ:= पानी.

मित्र: =आक्सीजन.

उर्वशी: =बिजली.

मित्रावरुण:= बिजली के दो भेद.

अश्विनी:= बिजली के दो भेद.

इंद्र:= बिजली के दो भेद.

वैश्वानरः =वायुमंडल में विद्यमान आग.

अदिति:= मूल प्रकृति.

नारद: =बादल.

ऐरावत:= बादल.

गंधर्व:= बादल.

ब्रह्म =धनश्रुव.

मित्र: =धनध्रुव,

अग्नि=: धनध्रुव.

क्षत्र:= ऋणध्रुव

वरुणः= ऋणध्रुव

सोमः = ऋणध्रुव [सूची हसराज अग्रवाल की पुस्तक 'साइंस इन द वेदज' से संगृहीत है।, क्या बालू की भीत पर खड़ा है हिंदू धर्म-286]

इसके बाद स्थान आता है वैदिक विज्ञान शिरोमणि **आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक** का। एक ऐसे आर्य समाजी जिन्होंने वेद तथा वैदिक ग्रंथो से विज्ञान निकालने में महारथ हासिल की है। लगता है, इनको ग्रंथो से विज्ञान निकालने की बीमारी स्वामी दयानंद द्वारा लिखित विमान विद्या और तार विद्या पढ़ के हुई है। आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक प्रमाण विदेशी वैज्ञानिको का ही लेते है और खंडन भी उन्ही वैज्ञानिको का करते है। वैसे उन्होंने ग्रंथो में स्वकथित विज्ञान द्वारा भले ही एक सुई तक न बनाई हो परन्तु फेकने में इनकी सीमा नहीं है। आचार्य अग्निव्रत हर दुसरे दिन बड़े बड़े वैज्ञानिको को चुनौती देते रहते है। उनकी जीवन गाथा आप यहाँ जा कर विस्तार से पढ़ सकते है Acharya AGNIVRAT NAISHTHIK thread (ancientarya.blogspot.com)

तासु पदमस्ति स्वस्ति स्वस्ति राये मरुतो दधातनेति मरुतो मरुतो ह व देवविशो ऽन्तरिक्षभाजनास्तेभ्यो ह यो निवेद्यः स्वर्गं लोकमेतीश्वरा हैनं नि वा रोद्धोर्वि वा मथितोः स यदाह स्वस्ति राये मरुतो दधातनेति तं मरुद्भ्यो देवविड्भ्यो यजमानं निवेदयति न ह वा एनं मरुतो देवविशः स्वर्गं लोकं यन्तं निरुन्धते न विमथ्नते ॥

इस ब्राह्मण वचन का अर्थ करते हुए वैदिक वैज्ञानिक लिखते है –

"**वैज्ञानिक भाष्यसार -** सूर्यादि तारों के अन्दर बाहरी भाग से **हाइड्रोजन** के नाभिक आदि पदार्थ केन्द्रीय भाग की ओर जब बढ़ते हैं, तो उनको मरुत् रूपी सूक्ष्म पवन रोकने वा नष्ट करने की क्षमता रखते हैं और ऐसी आशंका उसी समय होती है, जब उन **हाइड्रोजन** के नाभिकों की गति एवं मार्ग अनियमित होता है। उस समय उनकी गति और मार्ग को नियमित और संरक्षित करने के लिये उपर्युक्त जगती वा त्रिष्टुप् छन्दस्क छन्दरूप तरंगें उत्पन्न होती हैं, जिनके कारण वे **हाइड्रोजन** के नाभिक आदि पदार्थ संरक्षित गति और मार्ग को प्राप्त करके उन मरुतों के द्वारा नष्ट वा बाधित नहीं हो पाते हैं, बल्कि वे मरुत् ही उनको केन्द्रीय भाग की ओर ले जाने में वाहक का रूप धारण कर लेते हैं। इसी प्रकार संयोग करने वाले कणों के मध्य भी यही प्रक्रिया हुआ करती है" ॥[वेद विज्ञानं आलोक भाग १,p90]

ब्राह्मण वचन में यदि आम लिखा हुआ हो तो ये उसका अर्थ हाथी करते है। आप सोच रहे होंगे मैने आम की जगह कटहल क्यों नहीं बोला उसका कारण है की आचार्य अग्निव्रत का अर्थ मूल शब्द के 500km के दायरे में भी नहीं होता है। इस मंत्र को तो छोड़िये इसके आगे पीछे भी कोई हाइड्रोजन नहीं लिखा हुआ। न ही किसी नाभिक की बात है। वास्तव में इसका अर्थ-

“(प्रथम ऋचा के चतुर्थपाद में विद्यमान मरुत् शब्द का अन्वय और व्यतिरेक से तात्पर्य दिखला रहे हैं -) **तासु** उन (ऋचाओं) के (प्रथम मन्त्र में) **पदमस्ति** (चतुर्थ) पाद इस प्रकार है— 'स्वस्ति राये मरुतो दधातन अर्थात् हे मरुतो! हमको कल्याणकारी धन में प्रतिष्ठित करो' **इति** यहाँ प्रयुक्त **मरुतः** मरुत् **देवविशः अन्तरिक्षभाजनाः** देवताओं की प्रजा और अन्तरिक्षलोक में रहने वाले हैं। **यः तेभ्यः** जो उन (मरुतों) को **अनिवेद्य** निवेदन न करके **स्वर्गम् एति** स्वर्गलोक को जाता है, **एनम्** इस यजमान को (मरुद् देव) **नि वा रोद्धोः रोकने विवा मथितः** अथवा विनष्ट करने में **ईश्वराः** समर्थ हो जाते हैं। अतः **सः यद् आह** वह (होता) जो यह कहता है कि **'स्वस्ति राये मरुतः दधातन'** अर्थात् कल्याण युक्त धन में मरुद्देव हमें स्थापित करें तो **तं यजमानम्** उस यजमान के लिए **देवविड्भ्यः मरुदभ्यः** देवों में प्रजास्वरूप मरुतों से **निवेदयति** (होता) निवेदन करता है जिससे **देवविशः मरुतः** देवो में प्रजा स्वरूप मरुद्देव **स्वर्गं लोकं यन्तम् एनम्** स्वर्ग लोक जाते हुए इस (यजमान) को **न वै निरुन्धते** न तो रोकते हैं और **न विमथ्नते** न विनष्ट करते हैं।

आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक ने वेद विज्ञान आलोक में इसी प्रकार के काल्पनिक अर्थ कर रखे है। जहाँ पढो वही रश्मि दिख जाती है। विज्ञान निकालने का जबरदस्ती प्रयास किया है। इसका खंडन करना समय की बर्बादी समझता हूँ। केवल दिखाने के लिए एक लिखा है। बांकी ऊपर दिए गए लिंक पर विस्तार से जा कर पढ़ सकते हो। वैदिक ग्रंथो में जो विज्ञान है, हमें उसे ही दुनिया के समक्ष रखना चाहिए अपने आप को वैज्ञानिक सिद्ध करने का असफल प्रयास नहीं करना चाहिए। ये करने से पूरे विश्व में हमारा मजाक बनेगा और कुछ नहीं।

24. ......नासिका के सामने नासिकादि सब सूधा शरीर रखे। **वीर्य का प्रक्षेप पुरुष करे।** जब वीर्य स्त्री के शरीर में प्राप्त हो, उस समय अपना पायु, मूलेन्द्रिय और योनीन्द्रिय को ऊपर संकोच और वीर्य को खैंचकर स्त्री गर्भाशय में स्थिर करे। [संस्कार विधि, गर्भाधानप्रकरणम्]

अनुशीलन- बाकी बातें तो सत्यार्थ प्रकाश से मिलती जुलती है पर यहाँ पर जो एक बात विशिष्ट लिखी है वो है **"वीर्य का प्रक्षेप पुरुष करे"** अब मैं सोच में पड़ गया हूँ की ये लिखा क्यों है? भला वीर्य का प्रक्षेप पुरुष नहीं करेगा तो क्या स्त्री करेगी? यह सामान्य विवेक है। ये तो वही बात हो गई कि पक्षी अपने पंखों से उड़े। मनुष्य पैर से चले। कुत्ता मुँह से भौंके।

25. वेदों में मिलावट

"स्वामी हरिप्रसाद ने लिखा है कि वर्तमान संहिताओं में बहुत-सा भाग प्रक्षिप्त है और बहुत-सा भाग पुनरुक्त है, इसलिए हम यहाँ इन दोनों विषयों की भी आलोचना करके देखते हैं कि इस आरोप में कहाँ तक सत्यांश है।

प्रक्षेप और पुनरुक्ति

जहाँ तक हमें ज्ञात है अब तक एक भी प्रमाण इस प्रकार का नहीं उपस्थित किया गया कि अमुक स्थल प्रक्षिप्त है और इसे आज तक कोई नहीं जानता था। जिन स्थानों को प्रक्षिप्त बतलाया जाता है वे बहुत दिन से - ब्राह्मणकाल से सबको ज्ञात हैं। **वे प्रक्षिप्त नहीं हैं, किन्तु एक प्रकार के परिशिष्ट हैं** जो लेखकों और प्रेसवालों की असावधानी से मूल में घुसकर मूल जैसे प्रतीत होते हैं। **बालखिल्य सूक्त ऋग्वेद में, खिल अर्थात् ब्राह्मणभाग यजुर्वेद में, आरण्यक और महानाम्नी सूक्त सामवेद में और कुन्तापसूक्त अथर्ववेद में मिले हुए हैं।** इनको सब लोग जानते हैं और सबके विषय में विस्तृत प्रमाण उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त कुछ स्थल यजुर्वेद और अथर्ववेद में और हैं जिनकी सूचना उन्हीं वाक्यों से हो जाती है कि वे प्रक्षिप्त हैं। कहने का तात्पर्य यह कि जिस प्रकार शाखाओं का गड़बड़ सबको ज्ञात है और शुद्ध वैदिक शाखाएँ उपलब्ध हैं, उसी प्रकार प्रक्षिप्त भाग का भी ज्ञान सबको है और उसको हटाकर शुद्धसंहिताओं के रूप को सब जानते हैं। ऋग्वेद के बालखिल्य सूक्तों के लिए ऐतरेयब्रा० २८। ८ में लिखा है कि **'वज्रेण बालखिल्याभिर्वाचः कूटेन'**। इसके भाष्य में सायणाचार्य कहते हैं कि **'बालखिल्य- नामकाः केचन महर्षयस्तेषां सम्बन्धीन्यष्टौ सूक्तानि विद्यन्ते तानि बालखिल्यनामके ग्रन्थे समाम्नायन्ते '**, अर्थात् बालखिल्य नाम के कोई महर्षि थे। उनसे सम्बन्ध रखनेवाले आठ सूक्त हैं। वे खिल्य नाम के ग्रन्थ में लिखे गये हैं। इस वर्णन से ज्ञात हुआ कि बालखिल्य सूक्तों की अलग पुस्तक थी। वही पुस्तक ऋग्वेद के परिशिष्ट में आ गई है और अब तक अथ बालखिल्य और इति बालखिल्य के साथ ऋग्वेद में ही सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त अनुवाकानुक्रमणी में स्पष्ट लिखा हुआ है कि **'सहस्रमेतत्सूक्तानां निश्चितं खैलिकैर्विना'**, अर्थात् खिल भाग को छोड़कर ऋग्वेद के एक सहस्र सूक्त निश्चित हैं। यहाँ बालखिल्यों को ऋग्वेद की गिनती में नहीं गिना गया। इस प्रकार ऋग्वेद का खिल सबको ज्ञात है।

इसी प्रकार यजुर्वेद का मिश्रण भी प्रसिद्ध है। सर्वानुक्रमणी में लिखा है कि **'माध्यन्दिनीये वाजसनेयके यजुर्वेदाम्नाये सर्वे सखिले सशुक्रिय ऋषिदैवतछन्दास्यानुक्रमिष्यामः'**, अर्थात् ऋचा, खिल और शुक्रिय मन्त्रों के सहित माध्यन्दिनीय यजुर्वेद के ऋषि, देवता और छन्दों की अनुक्रमणी बनाता हूँ। यहाँ खिल भाग का प्रत्यक्ष संकेत है। इसके आगे अनुक्रमणी में ही लिखा हुआ है कि **'देवा यज्ञं ब्राह्मणानुवाकोविंशतिरनुष्टभः**

सोमसम्पत्, अर्थात् यजुर्वेद १९ । १२ के **'देवा यज्ञमतन्वत'** मन्त्र से लेकर बीस अनुष्टुप्छन्द ब्राह्मणभाग हैं और **'अश्वस्तूपरो ब्राह्मणाध्याय: शादंदद्भिस्त्वचान्तश्च'**, अर्थात् यजुर्वेद का चौबीसवाँ अध्याय सबका सब और २५ वें अध्याय के आरम्भ के शादं से लेकर त्वचा तक नौ मन्त्र ब्राह्मण हैं और **'ब्राह्मणे ब्राह्मणमिति द्वे काण्डिके तपसे अनुवाकश्च ब्राह्मणम्'**, अर्थात् यजुर्वेद अध्याय ३० के **'ब्राह्मणे ब्राह्मणम्'** और शेष सारा अध्याय ब्राह्मण है।; [वैदिक सम्पति,p503]

वैसे इसका खंडन महात्मा नारायणस्वामी ने अपने पुस्तक वैदिक रहस्य के पृष्ठ 60 पे किया है। वहाँ पर जाकर इसको विस्तार से पढ़ा जा सकता है।

“ऐतरेय ब्राह्मण के २८।८ में लिखा है **‘वज्रेण बालाखिल्याभिर्वाचः कूटेन ।'** इस वाक्य के भाष्य में सायणाचार्य ने लिखा है कि बालखिल्य नाम के कोई महर्षि थे । उनसे सम्बन्ध रखने वाले आठ सूक्त हैं। वे बालखिल्य नाम के ग्रन्थ में लिखे गये हैं।(बालखिल्यनामकाः केचन महर्षयः तेषां सम्बन्धीन्यष्टौ सूक्तानि विद्यन्ते तानि बालखिल्यनामके ग्रन्थे समाम्नायन्ते । - सायणाचार्य ॥)

इस पर हमारा कहना है कि ऐतरेय ब्राह्मण का यह वाक्य इतना स्पष्ट नहीं है जैसा उसे शर्मा जी ने समझा है। यदि यह मान भी लिया जाये तो उसके अन्त के अध्याय प्रक्षिप्त बतलाये जाते हैं।* शर्मा जी का दिया हुआ प्रमाण इसी प्रक्षिप्त भाग के अन्तर्गत है इसलिए कोई अप्रामाणिक लेख किसी दूसरे को अप्रमाणित करने में प्रमाण किस प्रकार माना जा सकता है ? सायणाचार्य का कोई (केचन) शब्द स्वयं बतलाता है कि उसको बालखिल्य किसी कथित महर्षि का कुछ ज्ञान नहीं था । उसने ऐसा प्रतीत होता है कि बिना किसी प्रमाण के ही बाखखिल्य ऋषि और उनके कथित बालखिल्य ग्रन्थ की कल्पना कर ली। देशी और विदेशी विद्वानों ने जो संस्कृत साहित्य के इतिहास लिखे हैं उनमें कोई बालखिल्य नामक ग्रन्थ नहीं देखने में आता” [वेद रहस्य, p 60]

** देखो Encyclopedia Brittanica में प्राचीन संस्कृत Ancient Sanskrit literature सम्बन्धी लेख*

सायन आचार्य ने संस्कृत में ‘कोई’ (केचन) शब्द लिखा हुआ है। इससे उनके वचन का खंडन नहीं होता कि वह महर्षि नहीं थे। यहाँ पर यह भी संभव है कि उनको बालखिल्य महर्षि के विषय में कुछ ज्यादा इतिहास ज्ञात न हो, लेकिन उन्होंने परंपरा में सुना होगा कि यह कोई बाखखिल्य महर्षि होंगे। दूसरा महात्मा नारायण स्वामी ने रघुनन्दन शर्मा के ऐतरेय ब्राह्मण तथा उसके भाष्य के विरुद्ध *Encyclopedia* का प्रमाण दिया है। इसके विरुद्ध यह Brittanica का प्रमाण कितना योग्य है, वह विद्वान् लोग विचार करे, परन्तु मुझे *Brittanica* पे *Ancient Sanskrit literature* में ऐसा कुछ नहीं मिला। आगे महात्मा जी सर्वानुक्रमणी के प्रमाण पर ही प्रश्न उठा दिया है। अन्यत्र अपने पक्ष में प्रमाण भी लिया है।

26. 'देवृकामा' या 'देवकामा'

ओं भूर्भुवः स्वः। अघौरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवृकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ [संस्कार विधि,विवाहप्रकरणम्, १५७][ऋग्वेद - मण्डल » 10; सूक्त » 85; मन्त्र » 44]

अनुशीलन:- "ऋग्वेद का पाठ 'देवकामा' है। अथर्व० (१४।२।१७,१८) में **'देवृकामा'** और **'देवकामा'** दोनों पाठ हस्तलेखों में उपलब्ध होते हैं। **स्वामी दयानन्द सरस्वती ऋग्वेद के पाठ में भी 'देवकामा' पाठ ही मानते हैं।** इस की पुष्टि संस्कारविधि के प्रथम सं० से होती हैं। प्र० संस्करण पृष्ठ ६१ पं०६ में ऋङ मन्त्र पाठ में 'देवकामा' पाठ छप गया था, परन्तु संशोधन पत्र पृष्ठ कालम २ में 'देवका' का **'देवृका'** शुद्ध पाठ दर्शाया है। प्र० संस्करण पृष्ठ ८४ पं० २३ में पारस्करगृह्य के पाठ में भी प्रकृत मन्त्र में ' **देवृकामा'** पाठ ही मिलता है" [पंडित युधिष्ठिर मीमांसक]

(देवकामा) निजपतिदेवं कामयमाना 'देवृकामा' पाठे तु देवॄन् कामयमाना [स्वामी ब्रह्ममुनि]

स्वामी ब्रह्ममुनि ने **'देवकामा'** पाठ माना है।

(देवकामा) वासनाओ के ऊपर उठने के लिए तू सदा उस देव की कामनावाला हो...[पंडित हरिशरण जी]

"देवकामा" स्योना सुखकरा च भव [आचार्य सायन]

वेद मंत्रो में शब्दों का हेर फेर गंभीर विषय है। सायन से प्राचीन किन भाष्यकारो ने देवृकामा पाठ माना है? दयानंद सरस्वती ने **'देवृकामा'** पाठ कहा से लिया? दयानंद सरस्वती के वेद भाष्य में कुछ मंत्रो के शब्द बदले हुये है अर्थात प्राचीन भाष्य के आधार पे नहीं है। आगे इसपर विस्तार से बात करेंगे

27. दयानंद सरस्वती की अंधभक्ति वैदिक मत नहीं

प्रथम तो किसी की भी अंधभक्ति वैदिक धर्म को विनाश के रास्ते ले जायेगा। हर एक लिखित वाक्य को प्रमाणों से परीक्षा करना सभी आर्यों का परम धर्म है। वैदिक धर्म प्रमाणों के आधार पे खड़ा है इसका दयानन्दिकरण करना मुर्खता है, समाज से द्रोह है। दयानंद सरस्वती पर प्रश्न उठाने मात्र से ही आर्य समाजी भड़क जाते है। कई आर्य समाजी के सामने यदि **'दयानंद सरस्वती'** बोल दो तो वो तुरंत आपको टोकेंगे कहेंगे की दयानंद सरस्वती के आगे स्वामी, ऋषि अथवा महर्षि लगाओ। यदि आपने ऋषि आदि नहीं लगाया तो कहेंगे की तुम ऋषियों का अपमान करते हो। वैसे 'दयानंद सरस्वती' यदि कोई बोले इसमे अपमान की क्या बात है? लोग तो प्राचीन ऋषियों को भी इस प्रकार कहते है जैसे व्यास, पतंजलि, कपिल, यास्क आदि। आर्य समाजी यहाँ प्रश्न नहीं उठाएंगे की तुमने व्यास कैसे बोल दिया? उनके नाम के आगे महर्षि लगाओ। लेकिन जैसे ही दयानंद का नाम लिया कहेंगे महर्षि क्यों नहीं लगाया। ये दयानंद सरस्वती के प्रति उनकी कट्टरता को दिखाता है। जिसप्रकार मुसलमानों के सामने मोहम्मद बोल दो तो उनको बहुत बुरा लगता है। कई जगह तो केवल मोहम्मद कहने मात्र से जान से मारने का फतवा निकल जाता है। उनका भी ऐसा ही कहना होता है की इस प्रकार तुम हमारे नबी का अपमान कर रहे हो उनके नाम के आगे हजरत लगाओ या सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम लगाओ।

कोई किसी का नाम सम्मानपूर्वक ले रहा है, उतना ठीक है उसके बाद उसकी इच्छा की वो 10 उपाधि लगाये अथवा नहीं। दयानंद सरस्वती, आदि शंकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि नाम यदि कोई बोलता है इसमे मुझे तो कोई अपमान नहीं दिखता।

दयानंद सरस्वती को ब्रह्मवाक्य बना दिया है। प्रचार ऐसा कर दिया है की यदि ऋषि दयानंद के विरूद्ध कुछ लिख दे तो वह वैदिक धर्म का द्रोही हो जाता है। संभवत: इसीलिए आर्य समाज के बड़े बड़े विद्वान् भी स्वामी दयानंद के विरुद्ध लिखने से पहले 10 बार सोचते है। **पंडित युधिष्ठिर मीमांसक** जैसे विद्वान् को भी दयानंद सरस्वती की समीक्षा करने से पहले लोगो से अनुरोध करना पड़ जाता है। उनको भी इस बात का ज्ञान अवश्य था की आर्य समाजी दयानंद के विरुद्ध कुछ सुनते ही भड़क जाते है -

"**यद्यपि अनेक व्यक्ति लेख का शीर्षक देखकर भड़केंगे,** तथापि हमारा अनुरोध है कि इस लेख में हमने व्यक्ति विशेष का नाम न देकर जो तथ्य सामने रक्खे हैं, उन पर आर्यविद्वान् तथा आर्यजनता गम्भीरता से विचार करें। यदि लेख में प्रस्तुत की गई विचारधारा को समय रहते नहीं रोका गया तो, शीघ्र ही समस्या सामने उपस्थित हो जायेगी" [पंडित युधिष्ठिर मीमांसक]

"ऋषि दयानन्द क्रान्तदर्शी अर्थात् भविष्य के द्रष्टा थे। इस विषय के अनेक प्रमाण ऋ० द० के पत्रों और उनके जीवन चरितों में उपलब्ध होते हैं। उन्हें यहां दोहराने को आवश्यकता नहीं। हम जो बात कहना चाहते हैं उस के सम्वन्ध में अर्थात् **आर्यसमाज की स्थापना की स्वीकृति देते समय उन्होंने जो अपने नाम से मतवाद चलने की आशंका व्यक्त की थी तथा आर्यसमाज स्थापना के इच्छुक अपने अनुयायियों को जो महत्त्वपूर्ण चेतावनी दी थी** उसे हम **'मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास'** जो सन् १९३३ में छपा था, से उद्धृत करते हैं। आशा है समय रहते इस चेतावनी पर ध्यान देकर आर्य-विद्वान् आर्यसमाज को **'दयानन्द-मत'** बनने से बचाने का प्रयत्न करेंगे" [पंडित युधिष्ठिर मीमांसक]

.... त्यारवाद (शास्त्रार्थ में जीवनजी के पराभव के पश्चात्) एमना निवास स्थान मा एमने माटे मान धरावता मुम्बई ना सम्भावित गृहस्थी ए जाई ने धार्मिक चर्चा करता करता मुम्बई मां आर्यसमाजस्थापन करवानी स्वामीजी ने विनंत्ति करी। त्यारे एमणे सर्वने उद्देशी ने स्पष्ट जणावी दीघु के' = **"उसके बाद [शास्त्रार्थ में जीवन जी के पराजय के पश्चात्] इनके निवासस्थान पर इनके प्रति सम्मान रखनेवाले बम्बई के संभ्रान्त गृहस्थों ने जाकर धार्मिक चर्चा करते करते बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की स्वामीजी से प्रार्थना की। इस पर उन्होंने सब को उद्देश करके स्पष्ट बता दिया कि**

स्वामी दयानंद- "भाई, हमारा कोई स्वतन्त्र मत नहीं मैं तो वेद के अधीन हुं और हमारे भारत में पच्चीस कोटि आर्य हैं। कई कई बात में किसी किसी में कुछ कुछ भेद है। सो विचार करने से अपने आप ही छुट जायेगा। मैं संन्यासी हूं और मेरा कर्त्तव्य यही है कि जो आपलोगों का अन्न खाता हूँ इसके बदले जो सत्य समझता हूं उसका निर्भयता से उपदेश करता हूं। मैं कुछ कीर्ति का रागी नहीं हूँ। चाहे कोई मेरी स्तुति करे, वा निंदा करे, मैं अपना कर्त्तव्य समझ के धर्म बोध कराता हूं, कोई चाहे माने वा न माने इसमें मेरी कोई हानि लाभ नहीं है। '

त्यारे एक भाई एकहु के प्रमे जो समाज स्थापन करीए, तो एमां कोई सार्वजनिक नुक- सान छे ? ते नो जबाब स्वामी जीए दीघो के =**(एक भाई ने कहा कि हम जो समाज स्थापित करें तो इसमें सार्वजनिक नुकसान है ? इसका जबाब स्वामी जी ने दिया कि)**

स्वामी दयानंद- "आप यदि समाज से पुरुषार्थ कर परोपकार कर सकते हो, समाज करलो इसमें मेरी कोई मनाई नहीं। परन्तु इसमें यथोचित व्यवस्था न रखोगे तो आगे गडबडाध्याय हो जायगा। मैं तो मात्र जैसा अन्य को उपदेश करता हूं वैसा ही आपको भी करूंगा और **इतना लक्ष्य में रखना कि कोई स्वतन्त्र मेरा मत नहीं हैं। और मैं सर्वज्ञ भी नहीं हुं। इस से यदि कोई मेरी गलती आगे पाइ जाए युक्तिपूर्वक परीक्षा करके इसी को भी सुधार लेना।** यदि ऐसा कोई न करोगे तो आगे एक मत हो जायेगा, और इसी प्रकार से बाबावाक्यं

प्रमाणं करके इस भारत में नाना प्रकार के मत मतान्तर प्रचलित होके भीतर-भीतर दुराग्रह रखके धर्मान्ध होके लड़के नाना प्रकार की सद्विद्या का नाश करके यह भारतवर्ष दुर्दशा को प्राप्त हुआ है इसमें, यह भी एक मत बढ़ेगा। मेरा अभिप्राय तो है कि इस भारतवर्ष में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित है वो भी वे सब वेदों को मानते हैं, इस से वेदशास्त्ररूपी समुद्र में यह सब नदी नाव पुनः मिला देने से धर्म ऐक्यता होगी। और धर्म ऐक्यता में सांसारिक और व्यवहारिक सुधारणा होगी और इससे कला कौशल्यादि सब प्रभीष्ठ सुधार होके मनुष्यमात्र का जीवन सफल होके अन्त में अपना धर्म बल से अर्थकाम और मोक्ष मील सकता है'।

दयानन्द की आशङ्का वास्तविकता में बदल रही है

"लगभग ३०-३५ वर्ष से मैं(युधिष्ठिर मीमांसक) देख रहा हूं कि आर्यससाज में कुछ व्यक्ति दयानन्द के मूल सिद्धान्त, जिसे उन्होंने ऊपर उदधृत अपने कथन में व्यक्त किया है तथा आर्यसमाज के चतुर्थ नियम में **'सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने के लिये सदा उद्यत रहना चाहिये'** घोषित किया है, को भुलाया जा रहा है। इस के स्थान में स्वाध्यायहीन दयानन्द के मन्तव्यों को यथावत् न जानने वाले **दयानन्द के प्रति भक्ति प्रवण आर्य व्यक्तियों को दयानन्द के नाम पर भ्रान्ति में डालकर नित नये वाद खड़े किये जा रहे हैं।;**[पंडित युधिष्ठिर मीमांसक, दयानंद विशेषांक]

ऋषिदयानंद सरस्वती ने स्वयं कहा है कि मेरा कोई अपना मत नहीं है, कोई स्वतंत्र लक्ष्य नहीं है। मैं कोई सर्वज्ञ भी नहीं हूँ। मेरी भी बात कही गलत दिखे तो उसको ठीक कर लिया जाए, क्योंकि उनको ऐसी आशंका थी कि आगे चलकर के आर्य समाज भी एक पंथ,संप्रदाय बन जाएगा जिनके आदि गुरु दयानंद सरस्वती होंगे। जैसा कि अन्य पौराणिक में बना हुआ है। ऋषि दयानंद सरस्वती बुद्धिमान थे, दूरदृष्टि रखते थे। उनको इस बात का भान था कि जिस प्रकार से ये लोग मेरी अंधभक्ति करते है, संभव है कि आगे जा करके यह एक मेरे नाम से पंथ ही बना दे। जहाँ पर मेरे विरुद्ध सत्य को भी अस्वीकार कर दिया जाएगा। इसीलिए दयानंद सरस्वती बार बार अपने अनुयायीयो को सावधान करते रहते थे। दयानंद सरस्वती मूर्ति पूजा का प्रबल खंडन करते थे। यदि वो ऐसा न करते तो इसमें भी कोई संदेह नहीं कि यही लोग उनकी मूर्ति बना करके पूजते। सत्य कों ग्रहण करना और असत्य को छोड़ना, जो कि आर्य समाज का मूल उद्देश्य था वो कहीं पीछे छुट जाएगा या कहें कि दयानंद के ही पीछे छुप जाएगा। सत्य को ग्रहण करने तथा असत्य को छोड़ने के लिए सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। यह नियम बदलकर के 'दयानंद को ग्रहण करने और दयानंद के खिलाफ़ जो भी बाते है उसको छोड़ने के लिए सर्वदा उद्यत रहना चाहिए' यह बन जाये। पंडित युधिष्ठिर मीमांसक ने अपनी चिंता इसी विषय पर ज़ाहिर की है। दयानंद सरस्वती के प्रति भक्ति इतनी प्रबल हो चुकी है कि उनके विरुद्ध यदि सत्य भी खड़ा हुआ हो तो दयानंद सरस्वती ही प्रमाण हो जाते है। दयानंद सरस्वती के विरुद्ध कुछ भी सत्य दिखता ही नहीं और दिखे भी कैसे अंधभक्ति का पर्दा होता ही ऐसा है। जैसे सैकड़ो गलती

होने के बाद भी मायावादी शंकराचार्य में गलती मानने को तैयार नहीं होते उसी प्रकार आर्य समाजी को भी दयानंद सरस्वती के कथनों में कही भी कुछ गलती नहीं दिखती।

वेद के पीछे दयानन्द चलेगा या दयानन्द के पीछे वेद

“आज तक आर्यसमाज की मान्यता रही है कि वेदों के पाठ में स्वर अक्षर मात्रा का भी परिवर्तन नहीं हुआ । परन्तु अब कतिपय व्यक्ति वेद को भी **'दयानन्द का वेद और पौराणिकों का वेद'** के रूप में बाँटने का स्वप्न देखने लगे हैं । एक महानुभाव ने पत्र द्वारा पूछा कि ऋग्वेद में एक पौराणिक देवकामा पाठ के स्थान में देवृकामा दयानन्द सम्मत पाठ है । क्या इस प्रकार के ऋग्वेद में दयानन्द सम्मत और पाठ भी हैं ? मुझे इस पत्र को पढ़ कर बड़ा आश्चर्य हुप्रा । आज तक आर्यसमाज **'वेद में पाठ परिवर्तन नहीं हुआ'** इसके प्रमाण के लिये परम्परागत वेद को कण्ठस्थ रखने वाले व्यक्तियों के पाठ को ही आधार मानता चला आया है । यही नहीं, बम्बई शास्त्रार्थ में जब पौराणिक विद्वान् ने **न तस्य प्रतिमा अस्ति मन्त्र का 'नतस्य'** = भक्तों के प्रति झुके हुए भगवान् की 'प्रतिमा अस्ति' मूर्ति है, ऐसा अर्थ किया तो आर्यसमाज की ओर से वेदपाठी ब्राह्मणों को बुलाकर उन से पदपाठ और क्रमपाठ पढ़वाकर प्रमाणित किया कि **'नतस्य' एक पद नहीं है 'न तस्य' दो पद हैं ।** इस प्रकार आर्यसमाज ने उस शास्त्रार्थ में विजय पाई थी ।

ऋषि दयानन्द के ऋग्वेद भाष्य में मैक्समूलर द्वारा प्रकाशित ऋग्वेद और सायण-भाष्य के कारण अनेक स्थानों में पाठ को अशुद्धियां हैं । और प्रायः मैक्समूलरीय सायण-भाष्य के पाठ के अनुसार ही अर्थ भी किया गया है । यथा-

मैक्समूलर पाठ	**वैदिक पाठ**
स्यन्द्रा (१.१८०.9।।५.५२.८)	स्पन्द्रा
स्यन्द्रासो (५.५२.३/५. ८७.३)	स्पन्द्रासो
स्यन्द्रो (६।१२।५)	स्पन्द्रो
मथ्ना (१।१८१।५)	मथ्रा

इन मैक्समूलरीय पाठों में से ऋ० द० के भाष्य में केवल ऋ० १।१८०।१५ के भाष्य में ‘स्पन्द्रा’ शुद्ध पाठ मिलता है, अन्यत्र स्यन्द्रा, स्यन्द्रो, स्यन्द्रासः और ‘मथ्ना’ पाठ ही है । मैक्समूलरीय पाठ का प्रभाव वैदिक संशोधन मण्डल से छपे सायणभाष्य (प्र० सं०) के १.१८०.९ में देखा जा सकता है । आगे वहीं के छपे सायण भाष्य में शुद्धपाठ ही छपा है ।

'स्यन्द्रा' आदि अपपाठ का कारण है हस्तलेखों में 'य' और 'प' के लेखन की साम्यता। मैक्स- मूलर ने केवल हस्तलेखों के आधार पर संपादन कार्य किया था, वेदपाठी तो कोई उसके पास था नहीं। अतः उसने 'प' को 'य' पढ़ लिया। इसी प्रकार 'मथ्ना' और ' मथ्रा' में थकार के नीचे लगे नकार वा रकार के लेखन में भी किञ्चिन्मात्र ही भेद होता है। मैक्समूलर ने 'मथ्नाति' क्रिया के साम्य से 'मथ्रा' को 'मथ्ना' पढा।

यहां विचारणीय है कि हम वैदिकों के पाठ को वेद का मूल पाठ मानें अथवा मैक्समूलरी पाठ के अनुसार ऋषि दयानन्द के भाष्य में छपे पाठ को 'दयानन्दीय पाठ' मानकर प्रामाणिक समझें। इससे भी भयानक दो उदाहरण ऋ० द० के यजुर्वेद भाष्य से नीचे उपस्थित किये जाते है-

२. यजुर्वेद १२।४७ में एक पद है - **सहस्त्रियम्**। अजमेर के छपे भाष्य में मन्त्रपाठ पदपाठ में सहस्त्रियम् पाठ छपा है। और पदार्थ में (सहस्त्रियम्) 'सहप्राप्तां भार्याम्'। इसी प्रकार भाषापदार्थ में भी छपा है - (सहस्त्रियम्) साथ वर्तमान अपनी स्त्री को। क्या यहां दयानन्द के यजुर्वेद का 'सहस्त्रियम्' पाठ माना जाये ? यजुर्वेदभाष्यभास्कर के सम्पादक ने 'गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः' के अनुसार अजमेरीय पाठ का ही अनुकरण किया है।

३. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के 'राजप्रजाधर्म विषय' में यजुर्वेद अ० २० का २५ वां मन्त्र 'ब्रह्म च क्षत्रं च' उद्धृत किया है। इस में 'तं लोकं पुण्यं यगेषम्' पाठ देकर **यज्ञकरणेच्छाविशिष्टम्** अर्थ किया है। यजुर्वेद भाष्य में **प्रज्ञेषं पाठ (जो परम्परागत शुद्ध पाठ है)** मानकर (प्र) (ज्ञेवम्) जानीयाम पदार्थ लिखा है।;[पंडित युधिष्ठिर मीमांसक, दयानंद विशेषांक]

(यज्ञेषं) यज्ञकरणेच्छाविशिष्टं विजानीमः[ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, यजुर्वेद२०.२५]

(प्र) (ज्ञेषम्) जानीयाम्। जानातेर्लेटि सिपि रूपम् [दयानंद भाष्य, यजुर्वेद२०.२५]

मंत्र एक ही है स्वामी दयानंद ने दो अलग जगहों पर भिन्न भिन्न शब्द लिख रखे है।

तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं प्रज्ञानं वा प्राप्ता भवन्तीत्यतः तल्लोकगमनं प्राथ्यर्ते।(उवट, यजुर्वेद२०.२५)

पुण्यं पवित्रं लोकं प्रज्ञेषं जानीयाम्(महीधर, यजुर्वेद२०.२५)

(प्रज्ञेषम्) = उत्कृष्ट जानता हूँ।(अच्युतानंद सरस्वती, यजुर्वेद२०.२५)

(प्रज्ञेषम्) जानता हूँ,[जयदेव शर्मा, यजुर्वेद२०.२५]

अत: **प्रज्ञेषं** पाठ ही शुद्ध पाठ है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका **(यज्ञेषं)** पाठ त्रुटी है।

ऋग्वेद - मण्डल » 1; सूक्त » 180; मन्त्र » 9

यहाँ एक ही मन्त्र Rigveda/1/180/9 (vedicscriptures.in) में स्पष्ट रूप से मन्त्र और पद पाठ में **'स्युन्द्रा'** और **'स्पन्द्रा'** का भेद देखा जा सकता है।

(स्पन्द्रा) प्रचलितौ[स्वामी दयानंद]

स्यन्द्रा स्यन्दनशीलौ युवां (आचार्य सायन)

स्वामी दयानंद ने **स्पन्द्रा** शब्द कहा से लिया?

ऋग्वेद - मण्डल » 1; सूक्त » 181; मन्त्र » 5

(मन्था) मन्थानि मथितानि[स्वामी दयानंद]

ते च **"मथ्ना** प्रमथनेनालोडनेन निष्पादितैः [आचार्य सायन]

अन्य भेद पंडित युधिष्ठिर मीमांसक ने दिखाए है, उसकी पाठक लोग स्वयं परीक्षा करे। कुछ भेद यहाँ दिखाए गए है।

यजुर्वेद में कितने मन्त्र

चत्वारिंशदध्यायस्थाः सर्वे मन्त्रा एतावन्तः १९७५ एकोनविंशतिः शतानि पञ्चसप्ततिश्च सन्ति॥ [दयानंद यजुर्वेद भाष्य, आरम्भ]

चालीसों अध्याय के सब मिलके १९७५ (उन्नीस्सौ पचहत्तर) मन्त्र हैं॥

दयानंद सरस्वती ने यजुर्वेद भाष्य आरंभ करते हुए २५ वे अध्याय में ४७ मंत्र माने है। लेकिन जब २५ वे अध्याय में भाष्य करने जाते है, तो ४८ मन्त्र भी लिख देते है।

अग्ने त्वं नोऽ अन्तमऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।

वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तम□ रयिं दाः॥४७॥

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनम् ईमहे सखिभ्यः ॥

स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो ऽ अघायतः समस्मात् 48 [यजुर्वेद स्वामी दयानंद]

अग्ने त्वं नो ऽ अन्तम ऽ उत त्राता शिवो भव वरूथ्यः ।

वसुर् अग्निर् वसुश्रवा ऽ अच्छा नक्षि द्युमत्तम□ रयिं दाः ।

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनम् ईमहे सखिभ्यः ॥४७ [यजुर्वेद चौखम्बा, महीधर, उवट भाष्य, अन्य यजुर्वेद]

स्वामी दयानंद ने '... **नक्षि द्युमत्तम रयिं दाः'** इसको ४७ कहा है फिर **'तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनम् ईमहे सखिभ्यः'** इस मन्त्र में एक और मन्त्र वाक्य जोड़ा है **'स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो ऽ अघायतः समस्मात्'** इन दोनों मन्त्र समूह को ४८ कह दिया है। वास्तव में अन्य प्राचीन यजुर्वेद भाष्य में '...**नूनम् ईमहे सखिभ्यः'(४७)** यही अंतिम मंत्र है।

अब प्रश्न ये उठता है की **'स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो ऽ अघायतः समस्मात्'** यह मन्त्र कहा से जोड़ा और क्यों जोड़ा? यदि जोड़ना ही था तो १९७६ मंत्रो की संख्या बताते।

वास्तव में यजुर्वेद दयानंदभाष्य में ४८ वे मन्त्र का जो पहला वाक्य है **'तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनम् ईमहे सखिभ्यः'** यह यजुर्वेद [3.२६] में आता है। यजुर्वेद [3.२६] का दूसरा मन्त्र वाक्य है **'स नो॑ बोधि श्रुधी हव॑मुरुष्या णो॑ऽअघायतः स॑मस्मात्'॥२६॥** इसीलिए एक वाक्य मिलने से स्वामी दयानंद ने तीसरे अध्याय से इस वाक्य['स नो॑ बोधि श्रुधी...] को उठा कर २५ वे अध्याय में ४८ वे मन्त्र के नाम से डाल दिया। पर ऐसा क्यों किया?

"ऋ० द० ने यजुर्वेद भाष्य के प्रारम्भ में २५वें अध्याय में ४७ मन्त्र मानकर (जो शुद्ध है) पूर्ण मन्त्रयोग १६७५ लिखा है। परन्तु भाष्य करते समय ४६ वें मन्त्र के आगे ४७वें मन्त्र की—

प्रग्ने त्वन्नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथपः। वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तम रयिं दाः। तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः।

इन तीन द्विपदाओं के साथ **'स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो श्रधायतः समस्मात्'** द्विपदा और जुड़ गई। इसके जुड़ जाने से चार द्विपदाओं के दो मन्त्र वन कर संख्या ४७ के स्थान में ४८ हो गई।

यहां यह विचारणीय है कि ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेद के भाष्य के प्रारम्भ में २५ वें प्रध्याय में ४७ संख्या लिख कर पूर्णयोग १९७५ लिखा है, उसे शुद्ध मानें या भाष्य के अनुसार ४८ मन्त्र मानकर पूर्णयोग १९७६ स्वीकार करें। इस प्रसंग में एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है-४७वें मन्त्र का भाष्य में **शक्वरी छन्द** लिखा है। **शक्वरी छन्द** में ५६ अक्षर होते हैं। यह अक्षर संख्या भाष्य में छपे ४७ मन्त्र की दो द्विपदायों में पूर्ण नहीं होती। **यदि परम्परानुसार ४७ वें मन्त्र में अग्ने त्वन्नो: 'वसुरग्नि' 'तं त्वा शोचिष्ठ'** तीन द्विपदाएं मानी जायं तो ५६ अक्षर पूरे हो जाते हैं। इस से विदित होता है कि जब छन्दोनिर्देश के लिये मन्त्र के अक्षरों की गणना की गई थी तब

४७वें मन्त्र में उपर्युक्त तीन द्विपदाओं का पाठ स्वीकार किया था। चौथी द्विपदा को जोड़कर दो मन्त्र बनाने पर **शक्वरी छन्द** का निर्देश अशुद्ध हो जाता है" [पंडित युधिष्ठिर मीमांसक, दयानंद विशेषांक]

"**दयानन्द के पीछे वेद को नहीं चलाना चाहिये। वेद के पीछे दयानन्द को चलाना चाहिये, अर्थात् ऋ० द० के ग्रन्थों में मन्त्रों के जो पाठ परम्परागत नहीं हैं।** किन्हीं कारणों से भ्रष्ट हो गये हैं, उन्हें दयानन्द–सम्मत या दयानन्द उचित पाठ की कल्पना करना दयानन्द के पीछे वेद को चलाना माना जायेगा। इस अवस्था में दयानन्द और सब ऋषियों मुनियों को 'वेद स्वतः प्रमाण हैं' **मत खण्डित होकर वेद दयानन्द के पराधीन होने से परतः प्रमाण हो जायेगा"** [पंडित युधिष्ठिर मीमांसक, दयानंद विशेषांक]

"इन सब परिस्थितियों पर ध्यान न देकर केवल दयानन्द के नाम पर उनके ग्रन्थ में छपी भूलों को स्वीकार कराने अथवा जो स्वीकार न करे उस के लिये दयानन्द विरोधी का फतवा देने का प्रयत्न करना ऋषि भक्ति प्रवण साधारणजनों में अपनी ऋषि भक्ति का नगारा पीटना अथवा अपने विशिष्ट पाण्डित्य की घोषणा के अतिरिक्त कुछ महत्त्व नहीं रखता। फिर भी ऐसे लोगों और इनके अनुयायियों से आर्यसमाज को यह खतरा अवश्य उत्पन्न हो गया है किआर्यसमाज शीघ्र ही 'दयानन्द मत' के रूप में परिणत हो जायेगा।इस दयानन्द अनभीष्ट स्थिति के बचाने का उत्तरदायित्व आर्यसमाज के विद्वानों का है। यही सोचकर मैंने यह लेख लिखा है **किसी व्यक्ति विशेष का विरोध करने की भावना से नहीं लिखा है।** आर्य समाज के मूर्धन्यविद्वान् इस मूलभूत समस्या पर गम्भीरता से विचार करें। इसी दृष्टि से उनका ध्यान आकृष्ट करने का यह क्षुद्र प्रयत्न किया है।;[पंडित युधिष्ठिर मीमांसक, दयानंद विशेषांक]

पंडित युधिष्ठिर मीमांसक आर्य समाज के प्रमुख विद्वानों में से एक है। यदि आर्य समाज में 10 प्रमुख विद्वानों की सूची बनाई जाये तो बिना युधिष्ठिर मीमांसक के वह सूची पूर्ण नहीं हो सकती है। ऐसे प्रकांड विद्वान् को भी लगता था की यदि मै दयानंद सरस्वती की गलती दिखाऊंगा तो आर्य समाजी लोग मेरे खिलाफ फतवा निकाल देंगे। यहाँ '**फतवा**' शब्द पर ध्यान देना चाहिए और जब युधिष्ठिर मीमांसक जैसा विद्वान् इस शब्द का प्रयोग करता है तो समझिये की ये बहुत बड़ी बात है। इसका सीधा अर्थ है की आर्य समाज को सत्य अथवा असत्य से कुछ लेना देना नहीं है, व्यक्ति विशेष अर्थात दयानंद की सत्ता इतनी ऊपर हो गई है की उनको ही नबी मान उनमे कुछ दोष दिखाने वालो के खिलाफ फतवा निकालते रहते है और अपने आप को प्रकांड ऋषि भक्त सिद्ध करते है। क्या ऋषि दयानंद सरस्वती इस अंधभक्ति से कभी प्रसन्न होते जो वैदिक धर्म का ही नाश कर रही हो ?

28. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में संस्कृत और हिंदी स्वामी दयानंद की

अनुशीलन:- ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में उपासना विषय में योग दर्शन के कुछ सूत्र लिखे है परन्तु उसकी व्याख्या संस्कृत में नहीं की है जबकि हिंदी में की है।

तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः[योग० १.२.३०] में कुछ व्याख्या लिखी है फिर आगे लिखते है **..एषां विवरणं प्राकृतभाषायां वक्ष्यते। = इसका विवरण प्राकृत भाषा में कहा जायेगा।**

और आगे प्राकृत अर्थात हिंदी में विवरण लिखा है, स्पष्ट है की हिंदी भी स्वामी दयानंद की है। परन्तु पंडित युधिष्ठिर मीमांसक 'हिंदी स्वामी दयानंद ने लिखी है, ऐसा नहीं मानते। इसका कारण है कि संभवतः पंडित जी को हिंदी में बहुत गलती दिखती है।

"ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपरि-निर्दिष्ट संस्कृत पाठ और भाषा पाठ में अन्तर होने पर भी भूमिका की भाषा को ऋषि दयानन्द कृत मानने और सिद्ध करने का प्रयत्न करना बहुत से सिद्धान्त- विरुद्ध और शास्त्र विरुद्ध लेखों का उत्तरदायित्व डालना **अप्रत्यक्ष रूप में स्वामी दयानन्द को मूर्ख सिद्ध करना है।** [प० यु० मीमांसक, दयानंद विशेषांक]

29. दानेन या ज्ञानेन [सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास ४]

अनुशीलन:- स्वामी दयानंद ने समुल्लास ४ में मनुस्मृति का एक श्लोक लिखा है-

स्मात्त्रयोऽप्या श्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्। गृहस्थेनेव धार्य्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही [मनु० 3.७८]

यहाँ **'दानेन'** नहीं **'ज्ञानेन'** पद आया है –

ज्ञानेन वेदार्थव्याख्यानजन्येनान्नेन [मेधातिथि]

वेदार्थव्याख्यानान्नदानाभ्यां [कुल्लुक भट्ट, ज्ञानेन का अर्थ वेद की व्याख्या किया है।]

स्वामी दर्शनानंद, तुलसीराम स्वामी, प्रोफेसर राजाराम, पण्डित हरिश्चन्द्र विद्यालंकार, पण्डित गंगाप्रसाद, पण्डित आर्य्यमुनि इन सभी आर्य समाजियों ने **'ज्ञानेन'** शब्द ही माना है।

एक सुरेन्द्र कुमार ने **'दानेन'** पद लिया है। यह बस दयानंद भक्ति का परिणाम है, क्योकि इसके पक्ष में उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया।

30. पति पत्नी के वस्त्र पहन के घर में न बैठे

अ॒भी॒रा त॒नूर्भ॑वति॒ रुश॑ती पा॒पया॑मु॒या । पति॒र्यद्व॒ध्वो॒ वास॑सा॒ स्वमङ्गा॑मभि॒धित्स॑ते ॥ऋग०10.85.30॥[हरिशरण सिद्धांतालंकार]

(१) एक युवक जिसका कि **तनू**= शरीर **रुशती** = देदीप्यमान होता है, वह **यत्**= यदि पतिः=गृहस्थ में प्रवेश करने पर, पति बनने पर **वध्वः वाससा** = वधू के वस्त्रों से **स्वं अंगम्**= अपने अङ्गों को **अभिधित्सते** = आच्छादित करना चाहता है, अर्थात् पत्नी के वस्त्र पहनकर घर पर ही बैठा रहता है। पत्नी के साथ गपशप ही मारता रहता है तो उसका शरीर **अमुया पापया**= उस पापवृत्ति से **अश्रीरा भवति** = बिना श्री के हो जाता है, शोभाशून्य हो जाता है। (२) वधू के वस्त्रों को पहनकर घर में ही बैठे रहने का भाव प्रेमासक्त होकर अकर्मण्य बन जाने से है। विवाहित होने पर भी एक युवक हृदय-प्रधान होकर अपने कर्त्तव्यों को उपेक्षित न कर दे। पत्नी के प्रति आसक्ति उसे कर्त्तव्य विमुख न बना दे। ऐसा होने पर भोग-प्रधान होकर नष्ट - श्रीवाला हो जाता है।

भावार्थ= नव विवाहित युवक को चाहिये कि भोग-प्रधान जीवनवाला न बन जाये। हर समय घर में ही न बैठा रहे।

अनुशीलन:- कौन पति अपनी पत्नी का वस्त्र पहन के घर में बैठता है? चलो ऐसा कोई करता भी है तो इसको वेद में लिखना हास्यस्पद बात है। इन सब बातो से वेद ईश्वर की पुस्तक नहीं मनोरंजक कहानी की किताब सिद्ध होती है।

31. वेदों में चक्र

अनुशीलन:- इस प्रकार के काल्पनिक चक्र नहीं होते इसकी परीक्षा स्वामी जी ३२ वर्ष से पहले ही कर चुके थे। स्वकथित जीवन चरित्र में इस प्रकार कहा है –

"...इनमे से कुछ के विषय हठ योग और **नाड़ीचक्र** अर्थात् मनुष्य की नाड़ियों को बताने वाली विद्या से सम्बद्ध थे"...... "इनसे यह विचार उत्पन्न हुआ कि पता नहीं यह ठीक भी है या नहीं। इनके ठीक होने में मुझको सन्देह पड़ गया। मैं प्राय: अपने सन्देह निवृत्त करने का प्रयत्न करता रहा परन्तु आज तक मेरे यह सन्देह दूर नहीं हो सके और मुझे इनको दूर करने का कोई अवसर भी प्राप्त न हुआ। एक दिन की बात है कि मुझको अकस्मात् एक शव नदी के ऊपर बहता हुआ मिला। उस समय ठीक अवसर मिला था कि मैं उनकी परीक्षा करता और अपने मन की उन बातों के विषय में जो उन पुस्तकों में लिखी थी, अपने सन्देह की निवृत्ति करता। अत: उन पुस्तकों को जो मेरे पास थीं एक ओर अपने समीप रखकर वस्त्रों को ऊपर उठा कर मैं

दृढ़तापूर्वक नदी में घुसा और शीघ्रता से भीतर जाकर शव को पकड़ कर तट पर लाया। मैंने उसको एक तेज चाकू से अच्छी प्रकार जैसे मुझ से हो सकता था, काटना प्रारम्भ किया। मैंने हृदय को उसमें से निकाल लिया और ध्यानपूर्वक उसकी परीक्षा की और देखा और हृदय को नाभि से पसली तक काटकर मैंने अपने सामने रखकर देखने का यत्न किया और जो वर्णन पुस्तक में दिया था उससे समता करने लगा और इसी प्रकार सिर और गर्दन के एक भाग को भी काटकर सामने रख लिया। यह जानकर कि इन पुस्तकों और शव में आपस में कोई समानता नहीं मैंने पुस्तकों को फाड़ कर उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और शव को फेंक कर साथ ही उन पुस्तकों के टुकड़ों को भी नदी में फेंक दिया। **धीरे-धीरे उसी समय से मैं यह परिणाम निकालता गया कि वेदों, उपनिषदों, पातञ्जल योग और सांख्यदर्शन के अतिरिक्त समस्त पुस्तकें, जो विज्ञान और योगविद्या पर लिखी गई हैं, निरर्थक और अशुद्ध हैं।;** [स्वकथित, जीवन चरित्र]

दयानंद सरस्वती स्वयं इन चक्रों को नहीं मानते थे पर अन्य आर्य समाजी इसको वेदों में लिखते है –

"भावार्थभाषाः -मानव शरीर में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय ये पाँच कोश और **मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, ललित, आज्ञा, सहस्रार ये आठ चक्र हैं।** योगाभ्यासी लोग स्थूल कोश से सूक्ष्म- सूक्ष्मतर कोशों के प्रति आरोहण करते हुए सूक्ष्मतम आनन्दमय कोश को प्राप्त कर परम ब्रह्मानन्द का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार निचले चक्र मूलाधार से प्राणों का ऊर्ध्व चङ्क्रमण करते-करते अन्त में सहस्रार चक्र में प्राणों को केन्द्रित कर मस्तिष्क और हृदय में परमात्म-ज्योति की अविच्छिन्न धारा को प्रवाहित कर लेते हैं। हे मित्र ! तुम भी वैसा ही सामर्थ्य संग्रह करो, जिससे उत्तरोत्तर अधिकाधिक उत्कृष्ट मार्ग पर चलते हुए तुम्हें विजय हस्तगत हो सके ॥२॥ [सामवेद, मन्त्र ९२, रामनाथ वेदालंकार]

32. ऋषि दयानंद सरस्वती मूर्ति तोड़ते थे?

अनुशीलन:- सर्व प्रथम तो स्वामी दयानन्द जी के मूर्ति पर विचार देखिए, वे मूर्तियों के विरोधी नहीं अपितु मूर्ति पूजा के विरोधी थे , और मूर्तियों को धार्मिक यादगार के रूप में मानने के समर्थन में थे, यह बात उनकी जीवनी और पत्र व्यवहार से मालूम चलती है।

- ईश्वर द्वारा बनाई गई मूर्ति(जगत) ही सर्वोत्तम मूर्ति है- "**मूर्ति उसकी रखते हैं, जिसका अभाव हो, गंगा तुम्हारे घाट के नीचे बहती है, उसकी मूर्ति रखने से क्या लाभ?**"[जीवन चरित्र पंडित लेखराम,p २३३]
- मूर्ति की पूजा नहीं, मूर्ति से आचरण सीखो- **"हां, उन प्रतिमाओं को देख के उन लोगों के गुण कर्मो का स्मरण करके आप भी वैसे ही गुण कर्मों को धारण करें कि जिस से उत्तम कहावे** (पं. भगवद्दत्त जी

द्वारा संपादित, महाशय मामराज जी आर्य द्वारा अन्वेषित, युधिष्ठिर मीमासंक जी द्वारा परिष्कृत, ऋषि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार और विज्ञापन, भाग 2, पृष्ठ-641)

- दयानंद सरस्वती मूर्ति तोड़ने के विरोधी – "यह तो प्रत्येक को अधिकार है कि मूर्तिपूजा को अधर्म समझे और घोषित करे **परन्तु यह किसी का साहस नही कि मूर्ति को तोडे और यदि तोड़े तो उसको दण्ड दिया जाता है।**; (जीवनचरित्र - महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती, पृष्ठ-637 तथा ऋषि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार और विज्ञापन, भाग-2, पृष्ठ-983 में भी उद्धृत)

स्वामी जी का स्पष्ट कहना था कि उनका काम भौतिक मूर्तियाँ- मन्दिर तोड़ना नहीं है -

"उन दिनों बाज़ार की नाप हो रही थी। बीच में एक मढ़िया थी जहाँ लोग धूप दीप दिया करते थे। बाबू मदनमोहनलाल ने स्वामीजी से कहा कि स्काट साहब आप को बहुत मानते हैं उनसे कह कर मढ़िया को हटवा दीजिये । **स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मेरा काम लोगों के मनोमन्दिरों से मूर्त्तियो निकलवाना है, ईंट पत्थर के मंदिरों को तोड़ना फोड़ना नहीं है"**(बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय आदि के द्वारा संकलित सामग्री के आधार पर पं. घासीरामजी द्वारा लिखित, 'महर्षि दयानन्द का जीवन-चरित, अध्याय-14, पृष्ठ 579)

helena blatvasky की पुस्तक से कुछ लोग दिखाते है जिसमें ऋषि दयानन्द को एक ब्राह्मण को मारते हुऐ और 100 मूर्ति तोड़ते हुऐ दिखाया है, उसकी समीक्षा करते है । पहले उस पुस्तक की प्रामाणिकता को ही जांच लेते है –

थियोसोफिकल सोसायटी की संस्थापिका हैलीना पैट्रोवना ब्लावाट्स्की (Helena Petrovna Blavatsky) ने रूसी भाषा में एक पुस्तक लिखी जो कि 'From the Caves and Jungles of Hindostan' नाम से अंग्रेजी में भी प्रकाशित की गई। इसमें मुलजी नामक व्यक्ति को यह कहते हुए दिखाया गया है कि- **"बनारस के एक मार्केट में स्वामी दयानन्द जी ने करीब सौ मूर्तियों को तोड़ा था"** (पृष्ठ-278)। यही स्रोत उन लोगों का आधार है जो स्वामी दयानन्द जी को मूर्तियों को तोड़ने वाला बताते हैं।

क्योंकी सर्वप्रथम यह पुस्तक रशियन में लिखी थी और बाद में अनुवाद इसका अँग्रेजी में हुआ , तो जो अनुवादक महोदय है वह बता रहे है कि blatvasky द्वारा इसकी manuscript हमेशा खराब अवस्था में पायी गयी और कुछ चीजे तो पुस्तक की लुप्त थी। उसकी प्रूफ sheets भी लेखक द्वारा कभी सही नहीं की गई

"Blavatsky says, were written in leisure moments, during 1879 and 1880, for the pages of the Russki Vyestnik, then edited by M. Katkoff. Mme. Blavatsky's manuscript was often incorrect; often obscure. The Russian com- positors, though

they did their best to render faith- fully the Indian names and places, often produced, through their ignorance of Oriental tongues, forms which are strange, and sometimes unrecognizable. The proof-sheets were never corrected by the author, who was then in India; and, in consequence, it has been impossible to restore all the local and personal names to their proper form.”['From the Caves and Jungles of Hindostan', preface]

अँग्रेजी अनुवादक ने जान बूझकर इस पुस्तक को मनोरंजन का रूप देने के लिए इसके incidents को overhype तरीके से पेश किया है , वोह ये बात स्वयं पुस्तक के introduction में कह रहा है और कुछ पौराणिक दयानन्द के द्वेषी में इस पुस्तक को प्रामाणिक बताकर दयानन्द जी पर आक्षेप कर रहे है।

“but I have freely availed myself of an author's privilege to group, colour, and dramatize them, whenever this seemed necessary to the full artistic effect; though, as I say, much of the book is exactly true, I would rather claim kindly judgment for it, as a romance of travel, than incur the critical risks that haunt an avowedly serious work."

हैलीना ब्लावाट्स्की की जीवनी 'When Daylight Comes' लिखने वाले हॉवर्ड मर्फेट ने भी लिखा है कि ये पुस्तक तथ्य और कल्पनाओं का मिश्रण है

“And she did, in fact, later write a book about it, or at least a series of pieces for the Moscow News that were later published as a book, Caves and Jungles of Hindustan. Her pen name for this, and other Russian writings, was "Radda-Bai." **But the book is not a strictly factual account of her experiences; it is rather a highly imaginative concoction of fact-and-fiction,** written in a style that established her literary reputation with Russian editors”('When Daylight Comes', पृष्ठ-36)

अब जो पुस्तक स्वयं काल्पनिक कहानी पर आधारित हो उसका प्रमाण कैसे माना जा सकता है।

33. शुद्र को दास कहो

“देव अथवा जयदेव। ब्राह्मण हो तो देवशर्मा, क्षत्रिय हो तो देववर्मा, वैश्य हो तो देवगुप्त और शूद्र हो तो देवदास इत्यादि” [संस्कार विधि, नामाकरणप्रकरणम्]

“जैसे ब्राह्मण का नाम विष्णुशर्मा, क्षत्रिय का विष्णु वर्मा, वैश्य का विष्णुगुप्त और शूद्र का विष्णुदास, इस प्रकार नाम रखना चाहिये। जो कोई द्विज शूद्र बनना चाहे तो अपना नाम दास शब्दान्त धर ले।'(ऋ०प०वि० ३४९)

अनुशीलन:- स्वामी दयानंद ने कहा- ब्राह्मण अपने नाम के अंत में शर्मा, क्षत्रिय अपने नाम के अंत में वर्मा, वैश्य अपने नाम के अंत में गुप्त और शुद्र को अपने नाम के नत में दास लगाना चाहिए

जबकि हमारे इतिहास रामायण महाभारत में ऐसा कुछ देखने को नहीं मिलता है। दशरथ, राम, कृष्ण, अर्जुन सामान्य नाम होते थे। किसी के नाम के अंत में वर्ण के कारण वर्मा, शर्मा, गुप्त और दास नहीं लगता था। इससे ज्ञात होता है की ये नवीन परम्परा है। दयानंद सरस्वती ने लिखा है की शुद्र अपने नाम के अंत में दास शब्द जोड़ ले जबकि इतिहास में हमें ऐसे प्रमाण भी मिलते है जहाँ क्षत्रिय के नाम के अंत में दास शब्द आया है, इससे भी इस बात का ज्ञान होता है की ये एक नवीन परम्परा(बाद में जोड़े गए श्लोक) है-

“पांचाल देश का राजा पिजबन पुत्र सुदास सातवें वैवस्वत मनु के भी बाद लगभग ८५वीं पीढ़ी में हुआ” [[महाभारत शन्तिपर्व ५९.९६- ९९,सप्तम अध्याय ४२ , मनु० 8.110,अन्तर्विरोध, सुरेन्द्र कुमार अज्ञात]

“उस अंशुमान्‌के दिलीप नामक पुत्र हुआ और दिलीपके भगीरथ हुआ जिसने गंगाजीको स्वर्गसे पृथिवीपर लाकर उनका नाम भागीरथी कर दिया॥ ३४-३५॥ भगीरथ से सुहोत्र, सुहोत्र से श्रुति, श्रुति से नाभाग, नाभाग से अम्बरीष, अम्बरीष से सिन्धुद्वीप, सिन्धुद्वीप से अयुतायु और अयुतायु से ऋतुपर्ण नामक पुत्र हुआ जो राजा नल का सहायक और द्युक्रीडाका पारदर्शी था॥ ३६-३७॥ ऋतुपर्णका पुत्र सर्वकाम था, **उसका सुदास और सुदासका पुत्र सौदास मित्रसह हुआ॥**; [vishnu puran 4.4.34-40]

“वसिष्ठजीके ऐसा कहने पर **राजा सौदास** भी अपनी अंजलि में जल लेकर मुनीश्वरको शाप देनेके लिये उद्यत हुआ।; [vishnu puran 4.4.56]

“धन्वन्तरिका पुत्र केतुमान् , केतुमान्‌का भीमरथ, भीमरथका **दिवोदास तथा दिवोदास** का पुत्र प्रतर्दन हुआ॥ ११॥ उसने मद्रश्रेण्यवंश का नाश करके समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी, इसलिये उसका नाम 'शत्रुजित्' हुआ॥ १२॥ दिवोदास ने अपने इस पुत्र (प्रतर्दन)-से अत्यन्त प्रेमवश 'वत्स, वत्स' कहा था,

इसलिये इसका नाम “वत्स” हुआ॥ १३॥;[kashyap vansh ka varnan, vishnu puran 4.8.12-13]

“सौदास उवाच

त्रैलोक्ये भगवन् किंखित् पवित्रं कथ्यतेऽनघ । यत् कीर्तयन् सदा मर्त्यः प्राप्नुयात् पुण्यमुत्तमम् ॥३॥ सौदास बोले- भगवन ! निष्पाप लोकोंमें ऐसी पवित्र वस्तु कौन कही जाती है,महर्षे ! तीनों जिसका नाम लेनेमात्र से मनुष्यको सदा उत्तम पुण्यकी प्राप्ति हो सके ? ॥

भीष्म उवाच

तस्मै प्रोवाच वचनं प्रणताय हितं तदा । गवामुपनिषद्विद्वान् नमस्कृत्य गवां शुचिः ॥ ४ ॥

भीष्मजी कहते हैं – **राजन्(**सौदास**)** ! अपने चरणोंमें पड़े हुए राजा सौदाससे गवोपनिषद् (गौओंकी महिमा के गूढ़ रहस्यको प्रकट करनेवाली विद्या) के विद्वान् पवित्र महर्षि वसिष्ठने गौओंको नमस्कार करके इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥;[anushasan parva 78.3]

राजा महाभिक, राजा निमि, अष्टक, आयु, राजर्षि क्षुप, राजा कक्षेयु, प्रतर्दन, दिवोदास, कोसलनरेश **सुदासः** पुरूरवा, राजर्षि नल, प्रजापति मनु, छवि, पुत्र, प्रतीप, शान्तनु,[dandharma parva 165.57]

“नाभागस्तस्य दायादः सिंधुद्वीपस्ततोऽभवत् । अयुतायुः सुतस्तस्य ऋतुपर्णो महाबलः ॥ ११॥

इसका पुत्र नाभाग और नाभाग का सिन्धुद्वीप नामक पुत्र हुआ था। उसका पुत्र अयुतायु तथा उसका पुत्र महान् बलवान् ऋतुपर्ण नामक हुआ था।

ऋतुपर्णस्य पुत्रोऽभूत्सुदासो नाम धार्मिकः ।सौदासस्तस्य तनयः ख्यातः कल्माषपादकः ॥.१२॥

ऋतुपर्ण का पुत्र **सुदास** नामक परम धार्मिक हुआ था। उसका पुत्र **सौदास** था जो कल्माषपाद नाम से विख्यात हुआ था।[kurma puran 21.12]

“गालव उवाच

महावीर्यो महीपालः काशीनामीश्वरः प्रभुः । दिवोदास इति ख्यातो भैमसेनिर्नराधिपः ॥ १ ॥ तत्र गच्छावहे भद्रे शनैरागच्छ मा शुचः । धार्मिकः संयमे युक्तः सत्ये चैव जनेश्वरः ॥ २ ॥

मार्ग में गालवने राजकन्या माधवीसे कहा- भद्रे ! काशीके अधिपति भीमसेनकुमार शक्तिशाली राजा **दिवोदास** महापराक्रमी एवं विख्यात भूमिपाल हैं। उन्हींके पास हम दोनों चलें। तुम धीरे-धीरे चली आओ । मनमें किसी प्रकारका शोक न करो। राजा दिवोदास धर्मात्मा, संयमी तथा सत्यपरायण हैं ॥ १-२ ॥

नारद उवाच

तमुपागम्य स मुनिर्व्यायतस्तेन सत्कृतः । गालवः प्रसवस्यार्थे तं नृपं प्रत्यचोदयत् ॥ ३ ॥

नारदजी कहते हैं - **राजा दिवोदास** के यहाँ जानेपर गालव मुनिका उनके द्वारा यथोचित सत्कार किया गया। तदनन्तर गालवने पूर्ववत् उन्हें भी शुल्क देकर उस कन्या से एक संतान उत्पन्न करनेके लिये प्रेरित किया॥ ३ ॥[udyog parva.17]

"आनकदुन्दुभि के देवकी से कीर्तिमान्, सुषेण, भद्रसेन, **ऋजुदास** तथा भद्रदेव नामक छः ॥ २६ [अ० १५] चतुर्थ अंश]

यहाँ कुछ उदाहरण दिए गए है जहाँ क्षत्रिय के नाम के अंत में दास शब्द आया है और भी विरुद्ध प्रमाण उपलब्ध है, परन्तु बुद्धिमान लोग इतने से ही अनुमान कर लेंगे

सुरेन्द्र कुमार ने **"मङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात् क्षत्रियस्य बलान्वितम् ।वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्** [Manusmriti २.३१]; इस श्लोक का अर्थ चीनी के सामान मधुर करने का प्रयास किया है। यदि दयानंद सरस्वती इन श्लोको का प्रमाण नहीं लेते तो शायद वो स्पष्ट रूप से इसे प्रक्षिप्त की कोटि में डाल देते। परन्तु अब क्या करे दुविधा हो गई दयानंद जी ने प्रमाण रूप में ले लिए अब करे तो करे क्या?

श्लोक[२.३१] का अर्थ – "ब्राह्मण का मंगल-सूचक शब्द से युक्त, क्षत्रिय का बल-सूचक शब्द से युक्त, वैश्य का धन-वाचक शब्द से युक्त और शूद्र का निन्दित-शब्द से युक्त नामकरण करना चाहिए ॥३ १॥;

सुरेन्द्र कुमार ने लम्बा चौड़ा अर्थ करते हुए श्लोक में आये **'जुगुप्सितम्'** शब्द अर्थ किया- **"रक्षणीय, पालनीय भाव बोधक शब्दों से"** आगे सुरेन्द्र कुमार ने इसकी मीमांसा करते हुए सारे परम्परागत अर्थ को ही गलत सिद्ध कर दिया - **'जुगुप्सितम्'** शब्द का **'निन्दा'** या **'घृणायुक्त'** अर्थ करना भी उचित नहीं है। यह शब्द **"गुपू रक्षणे'** धातु से स्वार्थ में **'सन्'** प्रत्यय के योग से बना है। स्वार्थ में होनेवाले प्रत्यप का अपना कोई विशेष अर्थ नहीं होता, अपितु धातु के मूलार्थ का ही बोध कराता है। अत: **"गुप्'** धातु के **"रक्षा करने'** अर्थ के अनुसार यहां **'जुगुप्सितम्'** का **'रक्षणीय, पालनीय, आश्रय देने योग्य"** भाव वाला अर्थ बनता है।[अनुशीलन, सुरेन्द्र कुमार]

सुरेन्द्र कुमार ने चालाकी से **'गुप् रक्षणे'** धातु से जुगुप्स शब्द बनाया है। परन्तु उन्होंने ये नहीं बताया की **'गुप्'** धातु निंदा अर्थ में भी आता है- **'गुप्- गोपने निन्दायां च'**[रक्षा करना, छुपाना, निंदा करना], **"जुगुप्सा, स्त्री, गुप निन्दायाम् + सन् + भावे अ- स्ततष्टाप् ।**[kalpdrum], **"जुगुप्सा"**। स्त्री **'गुप-निन्दायां स्वार्थे सन्--भावे अ टाप्**[वाचस्पत्यम्]

[Manusmriti २.३१] में 'जुगुप्सितम्' का अर्थ रक्षणीय और पालनीय क्यों संभव नहीं

- **"(शूद्रस्य तु)** शूद्र रखने के इच्छुक बालक का **(जुगुप्सितम्)** रक्षणीय, पालनीय भाव बोधक शब्दों से [जैसे-देवगुप्त, देवदास, सुदास, अकिंचन] नाम रखना चाहिए।;[सुरेन्द्र कुमार, २.३१] मै ये नहीं कह रहा की 'जुगुप्सितम्' का मतलब रक्षा अर्थ में संभव नहीं है। यहाँ शुद्र के लिए 'रक्षणीय नाम रखे' ऐसा अर्थ इसीलिए नहीं किया जा सकता है क्योंकि इसका विरोध अगले ही श्लोक से हो जाता है - **राज्ञः रक्षासमन्वितम**[२.३२] = **क्षत्रियो का रक्षा युक्त** नाम होना चाहिए। इसीलिए शुद्र के लिए 'जुगुप्सितम्' शब्द से जो रक्षा युक्त नाम रखने का अर्थ किया है,वह ठीक नहीं है।
- सुरेन्द्र कुमार ने अन्य जगह 'जुगुप्स' शब्द का अर्थ नकारात्मक ही किया है- जैसे उदासीन, निन्दित, घृणा आदि **"(विदुषां जुगुप्सितम्)** विद्वानों द्वारा निन्दित अन्न भी न खाये॥[४.२०९];
  (सर्वशः एव जुगुप्सेत) सर्वथा उदासीनता बरते[६.५८]
  (कृतनिर्णेजनान् कर्हिचित् न जुगुप्सेत) प्रायश्चित्त किये हुओं से कभी घृणा न करे-उनकी निन्दा न करे ॥[11.१८९]
- सुरेन्द्र कुमार को ये पता थी कि 'जुगुप्सितम्' शब्द वहाँ पर शुद्र के निंदा अर्थ में ही आया है परन्तु जिन श्लोक का प्रमाण दयानंद जी ने लिए उसी प्रकरण में ये भी है तो उनको यहाँ इसको सही सिद्ध करना पड़ गया और उन्होंने शब्दों का अर्थ प्रकरण विरुद्ध कर दिया
- [२.३२] में स्पष्ट कहा गया है की शुद्र का नाम दास सूचक होना चाहिए- **[शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम]** बुद्धिमान व्यक्ति २.३२ से भी २.३१ में **'जुगुप्सितम्'** क्या अर्थ होगा ज्ञान कर लेंगे
- सुरेन्द्र कुमार ने [२.३२] में **(शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम)** शूद्र का नाम सेवकत्व भाववाले शब्दों को जोड़कर रखना चाहिए।; सुरेन्द्र कुमार जी ने दास की जगह 'सेवक' शब्द का प्रयोग किया लेकिन छुपाते छुपाते उदहारण देते हुए लिख ही दिया की शुद्रो का नाम देवदास, धर्मदास, महीदास आदि होना चाहिए; दयानंद सरस्वती ने भी खुलकर शुद्र अपने नाम में दास शब्द लगाये ऐसा कहा है। फिर आप सोच रहे होंगे की मूल अर्थ में सेवक क्यों किया सीधा दास अर्थ कर देते। इसका उत्तर ये है की सुरेन्द्र कुमार के अनुसार मनु 'दास' शब्द को ही नहीं मानते और जहा कही दास शब्द आया है, सुरेन्द्र कुमार ने उसका अर्थ 'सेवक' कर दिया है। अथवा उसे प्रक्षिप्त बोल दिया है।
  "मनु 'दास' का अस्तित्व नहीं मानते, वे तो शूद्रवर्ण को स्वीकार करते हैं और उनका कार्य स्वेच्छा सेवाकार्य चुनना है" [अष्टम अध्याय ,७१॥,अन्तर्विरोध, सुरेन्द्र कुमार]

- [Medhātithi's commentary on 2.31] **"शुद्रस्य जुगुप्सितम् । कृपणको दीन: शबरक इत्यादि"**= शूद्र का वह निन्दनीय है,'-जैसे कि 'कृपणक,' 'दीना,' 'सर्वरका,' इत्यादि; kulluk bhatt ने भी निंदा वाचक अर्थ किया है।
- [Medhātithi's commentary on 2.32] **प्रेष्यो दास:** = प्रेष्य का मतलब है दास; kulluk bhatt ने भी लिखा - 'दास: शूद्रस्य'
- कुछ टीकाकारो ने ... प्रेष्यसंयुतम्!" का दास उपाधिधारी नामकरण यह भ्रान्तिपूर्ण अर्थ किया है।[सुरेन्द्र कुमार]; अब कहिये ये दयानंद सरस्वती का खंडन हुआ या नहीं क्योंकि दयानंद सरस्वती स्वयं कहते है **"जो कोई द्विज शूद्र बनना चाहे तो अपना नाम दास शब्दान्त धर ले।'**
- श्लोक २.३२ में प्रेष्य शब्द आया है। सुरेन्द्र कुमार ने 'प्रेष्य' का अर्थ 'सेवक' करके प्रमाण मान लिया। उसका कारण है की दयानंद सरस्वती ने इसका उल्लेख किया है इसके अतिरिक्त जहा भी 'प्रेष्य' शब्द या 'दास' शब्द आया है, सुरेन्द्र कुमार ने सबको प्रक्षिप्त बता दिया है।

देखो सुरेन्द्र कुमार ने खुद 'प्रेष्य' का अर्थ दास कर रखा है-

(परप्रेष्यत्वम्+एवं) दूसरों के दास होना आदि दुःख पाते हैं [12.७८]

(प्रेष्यान्) सेवक या दास[8.102]

(शत्रुषु प्रेष्यतां यान्ति) शत्रुओं के यहाँ दास बनते हैं ॥[12.70]

(परप्रेष्यत्वम्+एवं) दूसरों के दास होना आदि दुःख पाते हैं ॥[12.78]

प्रक्षिप्त

जिस में 'दास' शब्द आया वो प्रक्षिप्त

(बालेन स्थविरेण वा शिष्येण बन्धुना दासेन अपि वा भृतकेन कार्यम्) बालक, बूढ़े, शिष्य, बन्धु, दास और नौकर को भी साक्ष्य देना चाहिए॥ [8.70]

(एते सप्त दास-योनयः) ये सात प्रकार के दास होते हैं ॥[8.415]

(भार्या पुत्र: च दासः) पत्नी, पुत्र और दास[8.416]

(दास्यां वा दासदास्यां वा) अपनी दासी में या किसी दास की दासी में[9.179]

(दास मार्गवं सूते) 'दास' वा 'मार्गव' संज्ञक सन्तान को उत्पन्न करता है[10.34]

प्रक्षिप्त

सेवक,दास समानार्थक है। दास शब्द slave, servant etc के अर्थ में भी आता है। प्रकरण अनुसार सबका अर्थ होता है। ये बोलना की मनु 'दास' का अस्तित्व नहीं मानते ठीक नहीं है। दास शब्द निकृष्ट भी है और नहीं भी, उसका अर्थ प्रकरण पर निर्भर करता है। 'दास' शब्द आने से प्रक्षिप्त नहीं कहा जा सकता है। दास शब्द ऋग्वेद में आया है- **येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः** [२.१२.४]

34. नए शास्त्र वाक्यों की रचना

स्वामी दयानंद ने सत्यार्थ प्रकाश में शास्त्रों के नाम से ऐसे वाक्य की रचना की है जो की उस अमुक शास्त्र में पाए ही नहीं जाते। कही कही तो दो तीन शास्त्रों के कुछ शब्दों को उठाकर एक जगह रख उसका अर्थ कर दिया है। ये अजीबो गरीब विद्या का प्रकाश कैसे किया जाता है आप भी देखिये-

"विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत्" [sp5]

ये श्लोक मनु के प्रमाण से समुल्लास ५ में लिखा है। अब आश्चर्य की बात ये है की ये श्लोक मनुस्मृति में कही मिलता ही नहीं है। थोडा ध्यान दिया जाए तो **"विविधानि च रत्नानि**" यह वाक्य मनुस्मृति में १२.६१ में पाया जाता है। लेकिन आगे **"जायते हेमकर्तुषु"** वाक्य लिखा है। स्वामी दयानंद ने जो **"विविक्तेषूपपादयेत्"** लिखा है यह वाक्य १२.६१ में नहीं है। **विविक्तेषूपपादयेत्(**विविक्तेषु+ **उपपादयेत्)** इसमे **"विविक्तेषु"** पद इसी प्रकार के मिलते जुलते प्रसंग में मनुस्मृति ११.६ में पाया जाता है। इसी प्रसंग(ब्राह्मण अथवा वेद का ज्ञान रखने वाले को धन का दान देना) में "**उपपादयेत्"** शब्द ११.७३ में आया है। अर्थात संभव है की स्वामी दयानंद ने यह श्लोक १२.६१+११.६+११.७३ को जोड़कर बना दिया है और इसको मनु के प्रमाण से लिख दिया है। यह श्लोक बनाने की कौन सी चाइनीज तकनीक है?

आर्य समाजियों ने जब देखा की यह श्लोक तो मनुस्मृति में कही पाया नहीं जाता उन्होंने इसको ११.६(प्रक्षिप्त सुरेन्द्र कुमार) कह दिया क्योकि वहाँ इससे मिलती जुलती बात कही गई है। विद्यानंद जी का कहना है की बहुत से ऐसे श्लोक है जो प्राचीन पुस्तकों में मनुस्मृति के नाम से पाए जाते है लेकिन अभी यह वर्तमान मनुस्मृति में नहीं है। चलो ठीक है यह भी बात मान ली "**विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत्"** इस वाक्य को यदि मनुस्मृति से न दिखा सको तो कोई बात नहीं, किसी भी प्राचीन शास्त्र में मनु के नाम से दिखा दो। मेधातिथि के मनुस्मृति में कुछ श्लोको का भेद देखने को आता है, पर स्वामी जी का यह श्लोक तो उसमे भी नहीं है। समाजी कहेंगे की हो सकता है जिस पुस्तक से स्वामी दयानंद ने यह लिखा हो उसमे भिन्न पाठ हो और वो पुस्तक लुप्त हो गई हो। ऐसे तो कोई भी कुछ भी लिख दे और कहे की प्राचीन पाठ में था अब लुप्त हो गया हो।

प्रश्न- स्वामी दयानंद ऐसा क्यों करेंगे

उत्तर- स्वामी जी अनेक शास्त्रों के कुछ वाक्यों से एक शास्त्रीय वाक्य बनाकर उसका अर्थ प्रमाण रूप में करते थे। यह बात आगे और स्पष्ट होगी

मनुष्या ऋषयश्च ये, ततो मनुष्या अजायन्त

स्वामी दयानंद समुल्लास ८ में सृष्टि के आदि में अनेक जीव उत्पन्न हुए इसके पक्ष में प्रमाण देते हुए लिखा है- '**मनुष्या ऋषयश्च ये, ततो मनुष्या अजायन्त यह यजुर्वेद में लिखा है।;** यह वचन यजुर्वेद में कही नहीं है। सुरेन्द्र कुमार ने दयानंद सरस्वती के पाठ को ही बदल दिया है **"साध्या ऋषयश्च ये"** ॥ **"ततो मनुष्या अजायन्त"।** सुरेन्द्र कुमार ने **'मनुष्या'** पद की जगह **'साध्या'** पद ग्रहण किया है, वो इसीलिए क्योकि यजुर्वेद ३१.९ में **"साध्या ऋषयश्च ये"** पाठ आया है। **"संभव है कि श्रवणश्रान्ति से "मनुष्या:" पाठ लिखा गया हो"**[सुरेन्द्र कुमार] कहने का अर्थ है की दयानंद जी ने बोला **'साध्या'** ही होगा पर लिखने वाले ने **'मनुष्या'** सुन लिया होगा। दयानंद तो ऋषि है उनसे गलती हो नहीं सकती इसीलिए लिखने वाले की गलती है, यह बोलकर दयानंद का पाठ ही बदल दिया। वास्तव में यह गलती है ही नहीं जान बुझकर ऐसा लिखा गया है।

मंसाराम ने कहा है की ऋषि लोग वेदों के नाम से ऐसे वचन भी लिख देते है जो वेदों में शब्दशः नहीं होते इसके पक्ष में महाभारत का एक प्रमाण दिया है। परन्तु मंसाराम जी सामान्य अर्थ को विशिष्ट उद्देश्य में घुसा रहे है। दर्शन आदि में भी श्रुति कहकर सूत्र कहे जाते है पर आवश्यक नहीं की वह उसी प्रकार श्रुति में उपलब्ध हो, परन्तु स्वामी दयानद यजुर्वेद में कह रहे है फिर उनको यह मंत्र यजुर्वेद में दिखाना ही होगा और दुसरे संस्करण से तीन अलग अलग वाक्य तीन भिन्न शास्त्र के सिद्ध हो ही चुके है। अत: यह जानते हुए भी लिपा पोती करना शर्मनाक हरकत है।

स्वामी विद्यानंद ने '**मनुष्या**(मुण्डकोपनिषद् २.१.७) **ऋषयश्च ये**(यजु:० ३१.९), **ततो मनुष्या अजायन्त"** यही पाठ माना है, उसका कारण है की दयानंद जी ने लिखा ही यही है। सुरेन्द्र कुमार ने स्वामी विद्यानंद का खंडन करते हुए लिखा है "स्वामी विद्यानंद जी ने यहां पदों को तोड़कर 'मनुष्या:' को उपनिषद् का तथा 'ऋषय:" को यजुर्वेद का वचन माना है। यह अवांछनीय शैली है। हस्तलेखों में तथा द्वितीय संस्करण में यह एक ही प्रमाण के रूप में लिखित है। पदों को तोड़कर पृथक्- पृथक् मन्त्र में ढूंढना अनर्थकारी सोच है।;[सुरेन्द्र कुमार]

परन्तु स्वामी विद्यानंद की बात दूसरे संस्करण से स्पष्ट रूप से प्रमाणित है-

जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देता, क्योंकि "मनुष्याः" (मुण्डक० २।१।७), "ऋषयश्च ये"। (यजु० ३१।९) "ततो मनुष्या अजायन्त" (शत० १४।३।२।५) यह यजुर्वेद (और उसके ब्राह्मण) में लिखा है। इस प्रमाण से यही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों सहस्रों
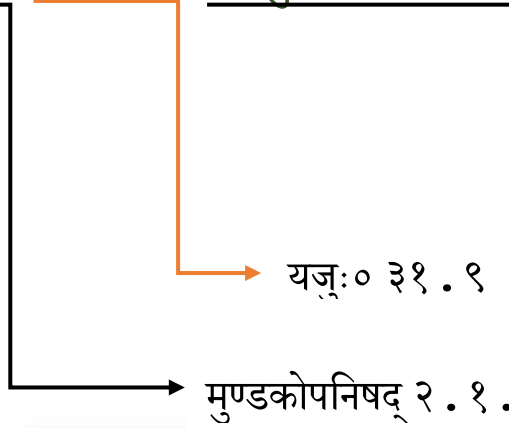
तो इस प्रकार स्वामी दयानंद ने **कही का ईट कही का रोड़ा भानुमती ने कुनवा जोड़ा** किया है। अनेक मनुष्य उत्पन्न हुए यह बात मुण्डक उपनिषद से प्रमाणित हो जाती है "**तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूता: साध्या: मनुष्या: पशवो वयांसि।**" उस [पुरुष] से अनेक प्रकार के देव, मनुष्य, पशु, पक्षी उत्पन्न हुए '**ततो मनुष्या अजायन्त**'[बृह०उप० १.४.३/ शत० 14.3.२.५]- तब बहुत से मनुष्य उत्पन्न हुए; परन्तु यहाँ अनेक मनुष्य ईश्वर से उत्पन्न नहीं हुए है जबकि स्त्री से उत्पन्न हुए है "**ताम समभवत् ततो मनुष्या अजायन्त**"**- व**ह पुरुष उस स्त्री के साथ संगत हुआ तब बहुत से मनुष्य उत्पन्न हुए; अत: मुण्डक उपनिषद से यहाँ ब्राह्मण(बृह०उप०) का प्रकरण भिन्न है। दोनों को जोड़कर एक वाक्य बनाया ही नहीं जा सकता है। अब यजुर्वेद का देखिये –

हे मनुष्यो! (ये) जो (देवा:) विद्वान् (च) और (साध्या:) योगाभ्यास आदि साधन करते हुए (ऋषय:) मन्त्रार्थ जानने वाले ज्ञानी लोग जिस (अग्रत:) सृष्टि से पूर्व (जातम्) प्रसिद्ध हुए (यज्ञम्) सम्यक् पूजने योग्य (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को (बर्हिषि) मानस ज्ञान यज्ञ में (प्र, औक्षन्) सींचते अर्थात् धारण करते हैं, वे ही (तेन) उसके उपदेश किये हुए वेद से और (अयजन्त) उसका पूजन करते हैं, (तम्) उसको तुम लोग भी जानो॥९॥[स्वामी दयानंद सरस्वती]

(ये देवा:) = जो विद्वान् **(च)** = और **(साध्या:)** = योगाभ्यासादि साधन करते हुए **(ऋषय:)** = मन्त्रों के अर्थ जाननेवाले ज्ञानी लोग हैं, जिस **(अग्रत:)** = सृष्टि से पूर्व **(जातम्)** = प्रसिद्ध हुए **(यज्ञम्)** = सम्यक् पूजने योग्य **(पुरुषम्)** = पूर्ण परमात्मा को **(बर्हिषि)** = मानस ज्ञान यज्ञ में **(प्र औक्षन्)** = सींचते

अर्थात् धारण करते हैं, वे ही **(तेन)** = उसके उपदेश किये हुए वेद से **(तम् अयजन्त)** = उसी का पूजन करते हैं।[अच्युतानन्द सरस्वती]

"योगाभ्यासादि साधन करते हुए मन्त्रों के अर्थ जाननेवाले ज्ञानी लोग हैं, जिससृष्टि से पूर्व प्रसिद्ध हुए" ऋषि लोग सृष्टि के आदि में आये। अनेक स्त्री पुरुष की उत्पत्ति यहाँ से भी सिद्ध नहीं हो सकती है।

इसी प्रकार समुल्लास 11 में **'पूज्यो देववत्पति:'** श्लोक मनुस्मृति के नाम से लिख रखा है। सुरेन्द्र कुमार ने इसे ५.१५४ से तुलना की है और खुद ही मनुस्मृति में प्रक्षिप्त कर रखा है। ५.१५४ में **'देववत्पति:'** तो है पर **'पूज्यो'** शब्द नहीं है। और भी बहुत ब्राह्मण उपनिषद के वचन लिखे है जो खोजने से भी नहीं मिलता सारे मिलावटी ग्रन्थ समाजियों के हाथ लग गए थे क्या?

35. भविष्य देखने की शक्ति

मनुष्य का भविष्य देखना तो दूर की बात है, ऋषि दयानंद सरस्वती ईश्वर के भविष्य ज्ञाता होने में भी निषेध करते है-

"**(प्रश्न)** परमेश्वर त्रिकालदर्शी है इस से भविष्यत् की बातें जानता है। वह जैसा निश्चय करेगा जीव वैसा ही करेगा। इस से जीव स्वतन्त्र नहीं और जीव को ईश्वर दण्ड भी नहीं दे सकता क्योंकि जैसा ईश्वर ने अपने ज्ञान से निश्चित किया है वैसा ही जीव करता है।

(उत्तर) ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है। क्योंकि जो होकर न रहे वह भूतकाल और न होके होवे वह भविष्यत्काल कहाता है। क्या ईश्वर को कोई ज्ञान होके नहीं रहता तथा न होके होता है? इसलिये परमेश्वर का ज्ञान सदा एकरस, अखण्डित वर्तमान रहता है। भूत, भविष्यत् जीवों के लिये है। हां जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है, स्वतः नहीं। जैसा स्वतन्त्रता से जीव करता है वैसा ही सर्वज्ञता से ईश्वर जानता है और जेसा ईश्वर जानता है वैसा जीव करता है। अर्थात् भूत, भविष्यत् छ वर्तमान के ज्ञान और फल देने में ईश्वर स्वतन्त्र और जीव किञ्चित् वर्तमान और कर्म करने में स्वतन्त्र है। ईश्वर का अनादि ज्ञान होने से जैसा कर्म का ज्ञान है वैसा ही दण्ड देने का भी ज्ञान अनादि है। दोनों ज्ञान उस के सत्य है। क्या कर्मज्ञान सच्चा और दण्डज्ञान मिथ्या कभी हो सकता है? इसलिये इस में कोई भी दोष नहीं आता।[sp7];

पर योग दर्शन कुछ और ही कहता है-

परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ॥ योग० 3.१६ ॥

अर्थ- धर्म - लक्षण - अवस्था इन तीनों परिणामों में संयम करने से योगी को भूत-भविष्यत् का भी ज्ञान हो जाता है ॥१६॥

व्या० भाष्यम् धर्मलक्षणावस्थापरिणामेषु संयमाद्योगिनां भवत्यतीतानागतज्ञानम्। धारणाध्यान समाधित्रयमेकत्र संयम उक्तः । तेन परिणाम- त्रयं साक्षात्क्रियमाणमतीतानागतज्ञानं तेषु संपादयति ॥ १६ ॥

पदार्थ - (धर्मलक्षणावस्थापरिणामेषु संयमाद्योगिनां भवत्यतीतानागतज्ञानम्) धर्म-लक्षण-अवस्था इन तीनों परिणामों में संयम करने -से योगियों को अतीत - अनागत का ज्ञान होता है । **(धारणाध्यानसमाधित्रयमेकत्र संयम उक्तः)** धारणा - ध्यान-समाधि इन तीनों का एक विषय में होना "संयम" पूर्व कहा गया । **(तेन परिणाम- त्रयं साक्षात्क्रियमाणमतीतानागतज्ञानं तेषु संपादयति)** उस संयम के द्वारा तीनों परिणामों के साक्षात् करने से प्रतीत अनागत का -ज्ञान योगी उन में सम्पादन करता है ॥ १६ ॥

सूत्र में योगी को भूत भविष्य का ज्ञान होता है ये स्पष्ट लिखा है। परन्तु समाजी अर्थ बदलने में माहिर होते है। यह सूत्र प्रत्यक्ष रूप से आर्य समाज के सिद्धांत के विरुद्ध है, इसलिए इसके भाष्य में स्वामी सत्यपति जी लिखते हैं- **"किसी भी विषय में प्रत्यक्ष आदि प्रमाण से परीक्षा करके सत्य असत्य का निर्णय करना आवश्यक है। ;** [स्वामी सत्यपति] और उसके बाद स्वामी दयानन्द ने जो सत्य असत्य की परीक्षा के लिए पांच आधार बताये है, उसको गिना दिया है। स्पष्ट है की ऋषि के शब्द प्रमाण को नहीं माना जा रहा है जबकि प्रमाणों से उसकी परीक्षा करने का यत्न किया जा रहा है। **"पांच कसौटियों के द्वारा योग के नाम से प्रचलित विभूतियों के विषय में सत्य और असत्य को जानने और जनाने का प्रयास किया जाएगा।**;[स्वामी सत्यपति]

प्रमाणों से परीक्षा करने के बाद स्वामी सत्यपति ने यह निर्णय दिया-

"धर्म, लक्षण, अवस्था इन तीन परिणामों में संयम करने से अतीत (भूत) और अनागत (भविष्यत्) काल का ज्ञान होता है । **योगी जिस विषय में संयम करता है उस विषय में सीमित ज्ञान हो जाता है ।** जैसे आजकल के भौतिक वैज्ञानिक वस्तुओं का सामान्य ज्ञान करते हैं कि यह भवन, पत्थर पुल आदि पदार्थ कितना पुराना है और आगे कितने समय तक चल सकेगा । इसी प्रकार से योगी भी भूत, भविष्यत् के पदार्थों का सीमित ज्ञान कर लेते हैं । परन्तु यह भवन, अथवा पुल कौन से क्षण में उत्पन्न हुआ था और कौन से क्षण में नष्ट हो जायेगा, क्षण सहित काल का ज्ञान नहीं कर सकते । चालीस वर्ष के पश्चात् इतने बजकर इतने मिनट में अमुक नामक व्यक्ति इस भवन को गिरा देवेगा । यह भी नहीं जान सकते ।

दूसरी बात चेतन पदार्थों के विषय में जाननी चाहिये । **योगी वा भौतिक वैज्ञानिक यह नहीं जान सकता कि यह देवदत्त नाम का व्यक्ति चालीस वर्ष के पश्चात् इतने बजे, इतने मिनट पर विष खाकर मर जायेगा** । क्योंकि

विष खाकर मरने वाले व्यक्ति के मन में भी यह बात नहीं है, कि मैं विष खाकर इस समय मरूँगा। जब यह बात उसके मन में ही नहीं है तो योगी उसको कैसे जानेगा ? चालीस वर्ष से लेकर आज तक किसी व्यक्ति ने मन, वचन और शरीर से कितने अच्छे और कितने बुरे कर्म कब, कहाँ पर किये हैं, यह योगी नहीं जान सकता। इसी प्रकार से किसी व्यक्ति के भविष्य में होने वाले कर्मों के विषय में भी नहीं जान सकता। **कभी कभी किसी व्यक्ति के कर्मों के विषय में किसी कर्म का सामान्य ज्ञान हो सकता है। सांसारिक व्यक्ति की अपेक्षा योगी को कुछ अधिक ज्ञान होता है।** यह अन्तर है ॥ १६ ॥;[स्वामी सत्यपति]

स्पष्ट रूप से योग दर्शन के सूत्रों का स्वामी सत्यपति ने अर्थ बदल दिया है। **यत्परः शब्दः स शब्दार्थः** इस न्याय से किसी भी वाक्य का सामान्य अर्थ ही ग्रहण होता है।

जैसे कि शंकराचार्य ने कहा कि नारी नरक का द्वार है। अब इसका खंडन कोई इस प्रकार करें कि यहाँ पर पापिनी स्त्री को नर्क का द्वार कहा है सभी स्त्रियों को नर्क का द्वार नहीं कहा है। तो इस प्रकार का खंडन संभव नहीं। क्योंकि शंकराचार्य ने पापणी स्त्री को नरक का द्वार कहा है, यह शंकराचार्य के वाक्य से सिद्ध करना होगा। अन्यथा अर्थ सामान्य ही ग्रहण होता है। अर्थ यही होगा कि वहाँ पर सभी स्त्रियों को नरक का द्वार कहा गया है। कोई उसमें नया शब्द जोड़ता है, विशिष्ट अर्थात् पापनी स्त्रियों की बात चल रही हैं, विशिष्ट शब्द जोड़ने पर उसको वह विशिष्ट शब्द सिद्ध करना होता है।

प्रथम पक्ष कहे की '**श्याम पानी पी रहा है।;** इसी वाक्य को दूसरा पक्ष इस प्रकार कहे की '**श्याम मीठा पानी पी रहा है ।;** इस स्थिति में वह पानी मीठा है, यह दुसरे पक्ष को सिद्ध करना पड़ेगा। पहले पक्ष को पानी को साधारण सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। क्योकि पहले पक्ष द्वारा कहे गए वाक्यों का सामान्य अर्थ ही ग्रहण किया जायेगा।

योग दर्शन ने स्पष्ट लिखा है – **"धर्म - लक्षण - अवस्था इन तीनों परिणामों में संयम करने से योगी को भूत-भविष्यत् का भी ज्ञान हो जाता है"** इसका अर्थ बदलकर सत्यपति जी ने ये कहा – "योगी जिस विषय में संयम करता है उस विषय में सीमित ज्ञान हो जाता है। जैसे आजकल के भौतिक वैज्ञानिक वस्तुओं का सामान्य ज्ञान करते हैं कि यह भवन, पत्थर पुल आदि पदार्थ कितना पुराना है और आगे कितने समय तक चल सकेगा। इसी प्रकार से योगी भी भूत, भविष्यत् के पदार्थों का सीमित ज्ञान कर लेते हैं।;

भला ये कोई भविष्य जानना हुआ यह तो एक अनुमान या अंदाजा लगाना हुआ। फिर तो ये मानना होगा की योगी को भी संभावित ज्ञान होता है अर्थात वह ज्ञान असत्य भी हो सकता है। जैसे भौतिक वैज्ञानिक पूरी तरह नहीं बता सकते कि यह पुल इसी समय गिरेगा। एक अंदाजा लगाया जाता है, जैसे मौसम वैज्ञानिक वर्षा होने का अनुमान करते है। उसी प्रकार योगी भी किसी का भविष्य पूरी तरह नहीं बता सकता। एक

अनुमान लगा सकता है, वह अनुमान कोई भी लगा सकता है, उसके लिए योगी बनने की कोई आवश्यकता भी नहीं है। इस प्रकार का काल्पनिक अर्थ कहाँ से किया? क्योकि योग दर्शन उक्त सूत्र में कही भी भविष्य के ज्ञान को सीमित और वह ज्ञान केवल अंदाजा मात्र होता है, नहीं कहा है।

भोज वृति से भी स्पष्ट है- **"तस्मिन्विषये पूर्वोक्तसंयमस्य कारणादतीतानागतज्ञानं योगिनः समाधेराविर्भवति- उस विषय में पूर्व कहे संयम के कारण से योगी को अतीत अनागत(भविष्य) का ज्ञान समाधि में उत्पन्न होता है"**.......... **"अनागताध्वनः समेत्य वर्तमानेऽध्वनि स्वं व्यापारं विधायातीतमध्वानं प्रविशति- अनागत मार्ग से मिलकर वर्तमान मार्ग में अपने व्यापार को करके अतीत मार्ग में प्रवेश करता है" "इत्येवं परिहृतविक्षेपतया यदा संयमं करोति - इस प्रकार विक्षेपों को दूर करके जब संयम करता है।; "तदा यत्किचिदनुत्पन्नमतिक्रान्तं वा तत्सर्वं योगी जानाति - तब जो कुछ ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ और जो छूटा हुआ है वह सब योगी जानता है।;** समाजियों को योग दर्शन के प्रमाण से यह सिद्ध करना चाहिए की वहाँ भविष्य देखने का अर्थ अंदाजा लगाना है, अन्यथा लोगो को मुर्ख बनाना बंद करे।

36. योगियों को पूर्व जन्म का ज्ञान

संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ॥ 3.१८ ॥

शब्दार्थ - (संस्कार - साक्षात् करणात्) संयम के माध्यम से संस्कारों का साक्षात्कार करने से **(पूर्व-जाति-ज्ञानम्)** पूर्वजन्म का ज्ञान होता है।

व्यास भाष्य में लिखा है – **(न च देशकालनिमित्तानुभवैर्विना तेषामस्ति साक्षात्करणम्)** परन्तु देश, काल, निमित्त, अनुभव के विना उनका साक्षात् नहीं किया जाता। **(तदित्थं संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानमुत्पद्यते योगिनः)** वह इस प्रकार संस्कार साक्षात् करने से योगी को पूर्व जाति का ज्ञान उत्पन्न होता है। **(परत्राप्येवमेव संस्कारसाक्षात्करणात्परजातिसंवेदनम्)** दूसरे पुरुष के चित्त धर्मों में भी इसी प्रकार संयम द्वारा संस्कारों के साक्षात् करने से उस दूसरे पुरुष की पूर्व जाति का ज्ञान होता है।

(अत्रेदमाख्यानं श्रूयते) इस विषय में यह आख्यायिका = कथा सुनी जाती है - **(भगवतो जैगिपव्यस्य संस्कार साक्षात्करणा • दशसु महासर्गेषु)** ऐश्वर्यशाली महर्षि जैगीपव्य को संस्कार साक्षात् करने से दश सृष्टियों में **(जन्मपरिणामक्रममनुपश्यतो विवेकजं ज्ञानं प्रादुरभूत)** जन्मपरिणाम क्रम को देखते हुए विवेकज ज्ञान उत्पन्न हुआ।

(अथ भगवानावट्यस्तनुधरस्तमुवाच) परमैश्वर्ययुक्त आवट्य ऋषि शरीरधारी ने उन महर्षि जैगीषव्य से प्रश्न किया - **(दशसु महासर्गेषु भव्यत्वादनभिभूतबुद्धिसत्त्वेन त्वया नरकतिर्यग्गर्भसंभवं दुःखं संपश्यता)** दश

महान् सृष्टियों में भोग अवश्यंभावी होने से प्रकाशमय बुद्धि द्वारा आपने नरक तिर्यकादि और गर्भो में उत्पन्न दुःख को साक्षात् करते हुए **(देवमनुष्येषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन सुखदुःखयोः)** और देव - मनुष्यादि योनियों में वारम्बार उत्पन्न होते हुए सुख-दुःखादि में **(किमधिकमुपलब्धमिति)** क्या अधिक उपलब्ध किया।

(भगवन्तमावट्यं जैगीषव्य उवाच) ऐश्वर्यसम्पन्न जैगीषव्य ऋषि ने उत्तर दिया कि - **(दशसु महासर्गेषु भव्यत्वादनभिभूत- बुद्धिसत्त्वेन मया नरकतिर्यग्भवं दुःखं संपश्यतः)** दश महा सृष्टियों में भोग अवश्यंभावी होने से प्रकाशमय बुद्धि द्वारा मैंने नरक तिर्यकादि जन्मदुःख को देखते हुए **(देवमनुष्येषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन)** और देव मनुष्यादि योनियों में बार २ उत्पन्न होते हुए **(यत्किंचिदनुभूतं तत्सर्वं दुःखमेव प्रत्यवैमी)** जो कुछ अनुभव किया वह सब दुःख ही जानता हूँ।

(भगवानाट्य उवाच) भगवान् आवट्य ऋषि ने पुनः प्रश्न किया - **(यदिदमायुष्मतः प्रधानवशित्वमनुत्तमं च संतोषसुखं)** जो यह जीवन काल में चित्त इन्द्रियादि को वश करके सबसे उत्तम संतोष सुख होता है **(किमिदमपि दुःखपक्षे निक्षिप्तमिति)** क्या यह भी आपने दुःखपक्ष में डाल दिया।

(भगवाञ्जगीपव्य उवाच) पुनः भगवान् जैगीषव्य ने उत्तर दिया**- (विषयसुखापेक्षयैवेदमनुत्तमं संतोषसुखमुक्तम्)** विषय सुख की अपेक्षा से ही यह संतोष सुख सबसे उत्तम कहा है। **(कैवल्य- सुखापेक्षा दुःखमेव)** कैवल्य सुख की अपेक्षा से तो संतोष सुख भी दुःख ही है। **(बुद्धिसत्त्वस्यायं धर्मत्रिगुणः)** यह त्रिगुण बुद्धि धर्म है **(त्रिगुणश्च प्रत्ययो हेयपक्षे न्यस्त)** और तीन गुणों से उत्पन्न हुआ ज्ञान त्याज्य पक्ष में रखा गया है **(इति दुःखरूप- स्तृष्णातन्तुः)** इस कारण दुःखरूप ही तृष्णा का तार है। **(तृष्णादुःखसंतापापगमात्तु प्रसन्नमबाधं सर्वानुकूलं सुखमिदमुक्त - मिति)** तृष्णा जनक दुःख संताप के नष्ट होने से प्रसन्न अबाधरूप सर्वानुकूल यह संतोष सुख कहा गया॥ १

इस प्रमाण से यह सिद्ध है की योगी पिछला जन्म जान सकता है। स्वामी सत्यपति ने लिखा है – "इस सूत्र में 'पूर्व जन्म का ज्ञान होता है' ऐसा माना है, **परन्तु महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने इस बात को स्वीकार नहीं किया**, इसलिए यह विषय और विचारणीय है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के वचन इस प्रकार से हैं

"प्रश्न - जो अनेक (जन्म) हों तो पूर्वजन्म और मृत्यु की बातों का स्मरण क्यों नहीं ?

उत्तर - जीव अल्पज्ञ है त्रिकालदर्शी नहीं, इसलिए स्मरण नहीं रहता। और जिस मन से स्मरण करता है, वह भी एक समय में दो ज्ञान नहीं कर सकता। भला पूर्वजन्म की बात दूर रहने दीजिये, इसी देह में जब गर्भ में जीव था, शरीर बना, पश्चात् जन्मा, पाँचवें वर्ष से पूर्व तक जो जो बातें हुई हैं उनका स्मरण क्यों नहीं कर सकता ? और जागृत वा स्वप्न में बहुत सा व्यवहार प्रत्यक्ष में करके जब सुषुप्ति अर्थात् गाढ निद्रा होती है तब जागृत आदि व्यवहार का स्मरण क्यों नहीं कर सकता ? और तुम से कोई पूछे कि बारह वर्ष के पूर्व

तेरहवें वर्ष के पाँचवें महीने के नवमें दिन दश बजे पर पहली मिनट में तुम ने क्या किया था ? तुम्हारा मुख, हाथ, कान, नेत्र, शरीर किस ओर किस प्रकार का था ? और मन में क्या विचार था ? (तो कुछ भी न बता सकोगे) जब इसी शरीर में ऐसा है, तो पूर्वजन्म की बातों के स्मरण में शङ्का करनी केवल लड़कपने की बात है। और जो स्मरण नहीं होता है इसी से जीव सुखी है, नहीं तो सब जन्मों के दुःखों को देख दुःखित होकर मर जाता। जो कोई पूर्व और पीछे जन्म के वर्तमान को जानना चाहे तो भी नहीं जान सकता। क्योंकि जीव का ज्ञान और स्वरूप अल्प है। यह बात ईश्वर के जानने योग्य है, जीव के नहीं।" [सत्यार्थप्रकाश नवम समुल्लास]

इसी प्रकार ऋषि दयानन्द सरस्वती जी ने पुनर्जन्म के विषय में 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में **"जब इसी जन्म के व्यवहारों को इसी शरीर में भूल जाते हैं, तो पूर्व शरीर के व्यवहारों का कब ज्ञान रह सकता है ?"**(अर्थात नहीं रहता) ॥१८॥ [स्वामी सत्यपति]

इस प्रकार दयानंद सरस्वती, पतंजलि का खंडन किया है। आर्य समाजी कहेंगे की दयानंद सरस्वती की बात अधिक युक्ति संगत है। फिर तुम ऋषियों को ब्रह्म वाक्य किस प्रकार मानते हो? क्या योग दर्शन शब्द प्रमाण नहीं है?

37. योग दर्शन में भूत पिशाच ब्रह्मराक्षस आदि

योग दर्शन 3.२६ के व्यास भाष्य को निचे दिया जा रहा है -

"ब्रह्मलोक के प्रथम भाग जनलोक में चार प्रकार के देवगण हैं - ब्रह्मपुरोहित, ब्रह्मकायिक, ब्रह्ममहाकायिक और अजरामर। ये भूत और इन्द्रियों पर अधिकार रखने वाले क्रमशः दुगुने दुगुने आयु वाले होते हैं।

ब्रह्मलोक के द्वितीय तपोलोक में तीन प्रकार के देवगण हैं- आभास्वर महाभास्वर और सत्य महाभास्वर। ये भूतों और इन्द्रियों और प्रकृति पर अधिकार रखने वाले क्रमशः दुगुने दुगुने आयुवाले, सबके सब ध्यानसुखाजीवी, ऊर्ध्वरेता, सत्य लोक नामक ऊर्ध्वलोक के विषय में अव्याहत ज्ञानवाले, जनलोकप्रभृति अधर भूमियों के विषय सुस्पष्ट ज्ञान वाले होते हैं।

ब्रह्मलोक के तृतीयलोक सत्यलोक में चार देवसमूह हैं - अच्युत, शुद्धनिवास, सत्याभ और संज्ञासज्ञी। ये सब अकृत-भवनन्यास (भवनस्थापनरहित), अपने आप में आश्रित, (निराधार) ऊपर- ऊपर स्थित, प्रकृति पर अधिकार रखनेवाले और **सृष्टि के बराबर आयु** वाले होते हैं।

उस पाताल समुद्र और पर्वतों में देवजाति, असुर, गन्धर्व, किन्नर, किम्पुरुष, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, अपस्मारक, अप्सरा, ब्रह्मराक्षस, कूष्णाण्ड और विनायक रहते हैं। सभी द्वीपों पर पुण्यात्मा देव और मनुष्य

रहते हैं। सुमेरु (पर्वत) त्रिदशों की उद्यानभूमि है। **उसमें मिश्रवन, नन्दनवन और चैत्ररथ नामक तीन उद्यान सुन्दर सुन्दर फूलों से सुशोभित हैं। वहाँ सुधर्मा नाम देवसभागार है, सुदर्शन नामक नगर है तथा वैजयन्त (पताकाओं वाले) महल हैं। ग्रह नक्षत्र और तारे ध्रुव से बँधे हुये वायु से प्रेरित नियमित गति वाले सुमेरु के ऊपर स्थित धूम रहें हैं।**

माहेन्द्रलोक निवासी छः देवनिकाय है - त्रिदश, अग्निष्वात्त, याम्य, तुषित, अपरिनिर्मित वशवर्ती और परिनिर्मित-वशवर्ती। वे सभी त्रिदशादि पूर्णमनोरथ वाले, अणिमादि [आठ] विभूति सम्पन्न, कल्प के बराबर आयुवाले, पूज्य, काम्यविषयभोगी, संकल्पमात्र निर्मित दिव्यशरीरधारी, उत्तम अनुकूल अप्सराओं के साथ परिवार बनाकर रहनेवाले होते हैं। महः नामक प्राजापत्यलोक में पाँच प्रकार के देव-निकाय (समूह) हैं - कुमुद, ऋभव, प्रतर्दन, अञ्जनाभ और प्राचिताभ। ये महाभूतों पर वशीत्व रखनेवाले, ध्यानसुखाश्रित सहस्रकल्प आयु वाले होते हैं।

तीन भूमियों वाला ब्रह्मलोक, उसके पश्चात् महान् प्राजापत्यलोक है। उसके पश्चात् माहेन्द्रलोक जो कि स्वः नामक लोक कहा गया है कि जिसके अन्तरिक्ष में तारे और भूमि पर प्रजा हैं। ऐसा संग्रहश्लोक में कहा है।

वहाँ नीचे से ऊपर ऊपर स्थित घन, सलिल, अनल, अनिल, आकाश, अन्धकार में स्थित क्रमशः महाकाल, अम्बरीष रौरव, महारौरव, कालसूत्र, अन्धतामिस्र छः महानरक भूमियाँ हैं। जहाँ अपने कर्मों से उपार्जित दुःखानुभूति करने वाले प्राणी कष्टपूर्वक लम्बी आयु को भोग करके जन्म लेते हैं। उसके पश्चात् महातल, रसातल, अतल, सुतल, वितल, तलातल, पाताल नामक सात पाताल हैं। आठवीं यह सात द्वीपों वाली वसुमती भूमि है।;

कालसूत्र, अन्धतामिस्र , रौरव और महारौरव नरक की बात पुराणों में

तासां क्रमेण विज्ञेयाः पञ्च पञ्चैव नायकाः। प्रत्येकं सर्वकोटीनां नामतः संनिबोधत॥ २४ रौरवः प्रथमस्तेषां रुदन्ते यत्र देहिनः। महारौरवपीडाभिर्महान्तोऽपि रुदन्ति च॥ २५ ततः शीतं तथा चोष्णं पञ्चाद्या नायकाः स्मृताः। सुघोरः सुमहातीक्ष्णस्तथा संजीवनः स्मृतः॥ २६[शिवपुराण, उमा संहिता, अध्याय ८]

अर्थ- उन नरककोटियोंमें प्रत्येकमें पाँच-पाँच प्रधान नरक जानने चाहिये। नामके अनुसार उन्हें सुनिये। उनमें प्रथम **रौरव** है, जहाँ प्राणी रोते रहते हैं, **महारौरव** की यातनाओंसे महान्से महान् प्राणी भी रोने लगते हैं।

रौरवे रोदमानाश्च पीड्यन्ते विविधेर्वधेः। महारौरवपीडाभिर्महान्तोषपि रुदन्ति च॥[शिवपुराण, उमा संहिता, अध्याय ९]

अर्थ- रौरव नरकमें रोते हुए जीव अनेक आघातोंसे पीड़ित किये जाते हैं और **महारौरव** नरककी यातनाओंसे बड़े-बड़े [धैर्यवान्] भी रोने लगते हैं॥ २८॥

कालसूत्र तथा अन्धतामिस्र नरक का उल्लेख क्रमश: शिव पुराण तथा देवीभागवत पुराण में आया है **"कालसूत्रश्च"** [शिवपुराण, उमा संहिता, अध्याय 16]**, "अन्धतामिस्रो"** [देवीभागवत ८.२१.२२]

अपने आपको ऋषियों का भक्त कहने वाले समाजी इस बात को माने नहीं तो ढोंग करना बंद करे और अंत में कुछ नहीं मिला तो प्रक्षेपास्त्र चला देना। व्यास भाष्य में कुछ देवताओ की आयु सहस्त्र कल्प और सृष्टिआयु तक लिखी है, जो पता नहीं किस दिव्य लोक में रहते है। **"इन्हीं जैनियों के गपोड़े लेकर जो पुराणियों ने एक लाख, दश सहस्त्र और एक सहस्त्र वर्ष का आयु लिखा सो भी सम्भव नहीं हो सकता तो जैनियों का कथन सम्भव कैसे हो सकता हे?"** [समुल्लास 12]

"इस सूत्र के भाष्य में अनेक असंभव बातें हैं। उनमें से कुछ असंभव बातों की ओर संकेत करते हैं। देव निकायों अर्थात् शरीरधारी मनुष्यों की आयु दो सहस्र, चार सहस्र, आठ सहस्र, सोलह सहस्र, बत्तीस सहस्र, चौसठ सहस्र, एक लाख अट्ठाईस सहस्र कल्प वर्षों और सर्ग की आयु मानी है। जो कि सर्वथा असंभव है।; [स्वामी सत्यपति]

आर्य समाजीयो की ये नीति बहुत पुरानी है, जहाँ भी ऋषियों की बात इनके सिद्धांत के विरुद्ध जाती है, ये लोग सीधा मिलावट बोल देते है- "इस भाष्य के अन्त में लिखा है कि योगी को भाष्य में लिखित समस्त विषयों का पूर्णरूप से साक्षात्कार करना चाहिये। **इस सारे का साक्षात्कार करना असंभव है। इस दृष्टि से इस भाष्य को मैं प्रक्षिप्त मानता हूँ।** कोई कह सकता है कि इसमें कुछ बातें सत्य हैं। किन्तु इतने मात्र से इसको प्रमाण कोटि में रखना उचित नहीं है।; [स्वामी सत्यपति]

38. चित्त का एक शरीर से दुसरे शरीर में गमन

बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥ योग० 3. ३८ ॥

सूत्रार्थ - अशुभ कर्म तथा सकाम शुभ कर्म एवं उनके संस्कारों को निर्बल कर देने से और मन के जाने-आने के मार्ग का परिज्ञान होने से 'चित्त का परशरीर में प्रवेश' होता है।

स्वामी सत्यपति(आर्य समाजी) ने इस पर लिखा है – **"चित्त को अपने शरीर से पूरा निकालकर अन्यों के शरीरों में डाल दिया जाता है, यह बात सिद्ध नहीं है।;**

"यदि योगी अपने चित्त एवं इन्द्रियों को शरीर से बाहर निकालकर दूसरे के मृतक शरीर में वा जीवित शरीर में प्रवेश करा देता है और स्वयं भी उस शरीर में प्रवेश कर जाता है तो योगी का अपना शरीर मर जायेगा। जब योगी दूसरे के शरीर से निकलकर अपने शरीर में आयेगा तो वह मरा हुआ मिलेगा। उसमें योगी रह नहीं सकता। यदि कोई यह कहे कि मरे हुए शरीर को जीवित किया जा सकता है तो यह मान्यता स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की दृष्टि से असम्भव कोटि में है। स्वामी जी ने लिखा है कि **"किसी ने मृतक जिलाये..... इत्यादि सब असम्भव है"**। [सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास][स्वामी सत्यपति]

"अभी यह बात भी सिद्ध नहीं है कि बिना स्थूल शरीर के योगी केवल सूक्ष्म शरीर से दूसरों के शरीर में जाने और आने का व्यापार कर सकता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की इस मान्यता को मैं भी ठीक समझता हूँ। यदि कालान्तर में मृतक शरीर को जिलाने की मान्यता प्रमाणों से सिद्ध हो जायेगी तो मैं इसे स्वीकार करूँगा। बिना स्थूल शरीर के योगी मन और इन्द्रियों सहित अन्यों के शरीर में प्रवेश करे, यह सिद्ध नहीं होता। इसमें सांख्य दर्शन का प्रमाण है-

न स्वातन्त्र्यात्तदृते छायावच्चित्रवच्च ॥ ३/१२ ॥

भावार्थ - स्थूल शरीर के बिना सूक्ष्म शरीर भोग को प्राप्त नहीं कर सकता। वैसे ही बिना स्थूल शरीर के, केवल सूक्ष्म शरीर से अन्यों के शरीर में जाना और पश्चात् अपने शरीर में आना यह व्यापार सिद्ध नहीं होता; [स्वामी सत्यपति]

दयानन्द सरस्वती जी ने यजुर्वेद १७/७१ मन्त्र के भाष्य में लिखा है - **"जो योगी तप आदि साधनों से योगबल को प्राप्त करके असंख्य प्राणियों के शरीरों में प्रविष्ट होकर अनेक नेत्र आदि अंगों से दर्शन आदि कार्य कर सकता है। अनेक पदार्थों और धनों का स्वामी होता है, उसकी हमें अवश्य परिचर्या = सेवा करनी चाहिये।**

इसका उत्तर देते हुए स्वामी सत्यपति ने जलेबी बनाई है, कहा है की यहाँ लक्षणा से अर्थ करना चाहिए। समाजी लोग अर्थ बदलने में माहिर है।

वैदिक – कुत्ता काला है।

समाजी – यहाँ लक्षणा से कुत्ता मोटा है अथवा दुखी है; ऐसा अर्थ है, क्योकि काला रंग भारीपन अथवा दुःख का प्रतीक है।

जब वाक्य में कही कुछ लक्षण दिखता ही नहीं तुम बस लक्षणा इसीलिए लगाते हो क्योकि ये तुम्हारे सिद्धांत के विरुद्ध है। स्वामी दयानंद ने वेद भाष्य में ये सब योग दर्शन से पढ़ के ही लिखा है। स्वामी दयानन्द ने लिखा- वह दूसरे के शरीर में घुसकर के आँखों से देखने का कार्य कर सकता है, किन्तु सूक्ष्म शरीर ये कैसे संभव हो सकता है? क्योंकि सूक्ष्म शरीर किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर में जायेगा तो उसकी आत्मा के पास पहले से ही सूक्ष्म शरीर है, वो सूक्ष्म शरीर कहा जाएगा। यदि वहाँ २ सूक्ष्म शरीर आत्मा के पास होते हैं, तो सूक्ष्म शरीर के ज्ञान से योगी को ज्ञान कैसे होगा? क्योंकि ज्ञान गुण तो आत्मा का होता है। इसलिए दयानंद जी के भाष्य में चित स्थानांतरण नहीं माना जा सकता है। यहाँ आत्मा का स्थानांतरण है क्योंकि आत्मा जब किसी दूसरे के शरीर में जाएगी तभी वह उसके आंख से देख पाएगी, कानों से सुन पाएगी, उसके अंगों का उपयोग कर पाएगी उसके पदार्थों की स्वामी हो पायेगी। यदि दयानंद भाष्य में चित्त मानोगे फिर चित्त को चेतन मानना होगा।

योग दर्शन का संख्या दर्शन से स्वामी सत्यपति ने एक विरोध दिखाया है अन्य विरोध हम दिखाते है –

तद्बीजात्संसृतिः ॥3. ३ ॥

सूत्रार्थ - तद्बीजात् = उन स्थूल भूतों के बीज अर्थात् उपादानभूत तन्मात्राओं के घटित सूक्ष्म शरीर से, **संसृतिः** = संसरण अर्थात् आत्माओं का देहान्तर रूप में गमनागमन होता है।

आविवेकाच्च प्रवर्तनमविशेषाणाम् ॥3. ४ ॥

सूत्रार्थ - च = और, **अविशेषाणाम्** = अविशेषों अर्थात् सूक्ष्म भूतों से घटित सूक्ष्म शरीर का, **प्रवर्तनम्** = संसरण(बारम्बार गमनागमन), **आविवेकात्** = विवेक ज्ञान का उदय होने तक (बना रहता है)।

इसी पर **ब्रह्ममुनि** ने भाष्य करते हुए लिखा है-

"तद्बीजात् संसृतिः ॥3. ३ ॥

(तद्बीजात्) उस स्थूल शरीर के बीजभूत महत्तत्त्व से-तन्मात्रपर्यन्त आदि से निर्मित वासनायुक्त सूक्ष्मशरीर से **(संसृतिः)** एक देह से दूसरे देह में गति होती है-"योनिकोटिसहस्त्रेषु सृतीश्चास्यान्तरात्मनः " (मनु० ६ / ६३) इस अन्तरात्मा की सृतियां गतियां असंख्य योनियों में होती हैं ॥ ३ ॥

कब तक वह बीज भूत महत्तत्त्वादिक प्रवृत्त होता है, यह कहते-

आविवेकाच्च प्रवर्तनमविशेषाणाम् ॥3.४॥

(च) और **(अविशेषाणाम्)** उन बीजरूप महत्तत्त्व-अहङ्कारतन्मात्रों का **(प्रवर्तनम्)** स्थूलशरीरनिर्माणार्थ प्रवृत्ति-व्यवहार **(आविवेकात्)** जब तक विवेक न हो जावे तब तक होता है, विवेक हो जाने पर निवृत्त हो जाता है ॥ ४ ॥;

मुक्ति में सूक्ष्म शरीर आत्मा के साथ नहीं रहता अन्यथा जन्मान्तर में हमेशा साथ रहता है। यह बात सांख्य से प्रमाणित है। योग और सांख्य में स्पष्ट विरोध सिद्ध है।

39. योगी का आकाश गमन

कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम् ॥योग० 3.४२ ॥

शब्दार्थ- **(काय-आकाशयोः)** शरीर और आकाश के **(सम्बन्ध - संयमात्)** सम्बन्ध में संयम करने से **(लघु-तूल - समापत्तेः - च)** और हल्के तूल आदि पदार्थों में संयम के द्वारा समापत्ति प्राप्त होने पर **(आकाश - गमनम्)** आकाश में गमन सिद्ध हो जाता है।

व्या० भा० यत्र कायस्तत्राकाशं तस्यावकाशदानात् कायस्य, तेन संबन्धः प्राप्तिः । तत्र कृत- संयमो जित्वा तत्संबन्धं लघुषु वा तूलादिष्वापरमाणुभ्यः समापत्तिं लब्ध्वा जितसंबन्धो लघुर्भवति । लघुत्वाच्च जले पादाभ्यां विहरति, ततस्तूर्णनाभितन्तुमात्रे विहृत्य रश्मिषु विहरति । ततो यथेष्टमाकाश- गतिरस्य भवतीति ॥ ४२ ॥

व्यास भाष्य हिंदी- जहाँ शरीर होता है वहाँ आकाश होता है (शरीर की स्थिति के लिए) आकाश के (द्वारा) अवकाश देने से शरीर का उससे सम्बन्ध होता है। वहाँ संयम करने वाला (योगी) उस सम्बन्ध को जीतकर रूई आदि परमाणु पर्यन्त लघु पदार्थों में समापत्ति को प्राप्त करके उस सम्बन्ध को जीतकर लघु (हो जाता है), लघु होने से जल पर पैरों से चलता है। पश्चात् मकड़ी के जाले के तन्तुओं में विचरण कर किरणों में विचरता है। उससे इच्छानुसार योगी का आकाश में गमन होता है ॥ ४२ ॥

दयानद सरस्वती ने सिद्धियो का अर्थ ही बदल रखा है, उन्होंने कहा ये सिद्धिया चित्त(मन) में पैदा होती है, जबकि ये बात न तो मूल सूत्र में लिखी है और न ही व्यास भाष्य में। देखिये-

"अणिमा आदि विभूतियाँ हैं। ये योगी के चित्त में पैदा होती हैं। सांसारिक लोग जो यह मानते हैं कि ये योगी के शरीर में पैदा होती हैं, वह ठीक नहीं है। 'अणिमा' का अर्थ यह है कि [योगी का चित्त] छोटी से छोटी वस्तु का विशेष सूक्ष्म होकर नापनेवाला होता है। इसी प्रकार बड़े से बड़े पदार्थ को विशेषकर बड़ा होकर योगी का मन घेर लेता है, उसे 'गरिमा' कहते हैं। ये मन के धर्म हैं, शरीर में इनकी शक्ति नहीं है। इस तरह श्रवण, मनन, निदिध्यासन, साक्षात्कार हो जाने से निसन्देह स्पष्ट ज्ञान प्राप्त हो जाता है। [उपदेशमञ्जरी ११वां उपदेश]

दयानंद सरस्वती का झूठ व्यास भाष्य से स्पष्ट सिद्ध है – **"लघुत्वाच्च जले पादाभ्यां विहरति"-** लघु होने से जल पर पैरों से चलता है।; यहाँ चित्त से उड़ने की बात नहीं है, चित्त में पैर नहीं होते है। सूत्र और व्यास भाष्य में शरीर के उड़ने की बात है, चित्त से गमन की बात नहीं है। **भोज वृति से ये बात और स्पष्ट सिद्ध हो जाती है - कायः पाचभौतिक शरीरं=** पंच भौतिक शरीर "काया" कहलाती है; **तस्याऽऽकाशेनावकाशदायकेन यः संबन्धः**= उस का अवकाशदायक जो आकाश उस से जो सम्बन्ध है; **तत्र संयमं विधाय=** उस में संयम करके; **लघुनि तूलादी समापतिं तन्मयीभावलक्षणां च विधाय** = हलके रूई आदि में समापत्ति अर्थात् तन्मयी भावरूप करके; **प्राप्तातिलघुभावो योगी** = अति लघु को योगी प्राप्त होक; **प्रथमं यथारुचि जले संचरन्क्रमेणोर्णनाभतन्तुजालेन संचरमाणः=** प्रथम इच्छा पूर्वक जल के ऊपर विचर कर क्रम से ऊर्णनाभितन्तु अर्थात् मकड़ी के तन्तुओं से उत्पन्न जाले के सहारे विचरता हुआ; **आदित्यरश्मिभिश्च विहरन्यथेष्टमाकाशेन गच्छति=** तत्पश्चात् आदित्यरश्मियों के साथ विचरता हुआ इच्छापूर्वक आकाश में गमन करता है॥

"मन्त्रैराकाशगमनाणिमादिलाभः=मन्त्रों के द्वारा आकाशगमन, अणिमा आदि की प्राप्ति होती है।;[व्यास भाष्य ४.१]

पंच भौतिक शरीर को कहके भोज ने स्पष्ट कर दिया है की यहाँ शरीर से उड़ने की बात है, वैसे व्यास भाष्य से भी सिद्ध है, परन्तु समाजी लोग जलेबी बनाने में धुरंधर है, इसीलिए भोज वृति भी दी गई है। यदि आर्य समाजी योगी के हवा में उड़ने जैसे असंभव बात को मानते है, फिर पुराणों के चमत्कार का खंडन करना उनका दोगला चरित्र दिखाता है। स्वामी सत्यपति ने इसे मानने से इनकार कर दिया है, कहते है, यह परीक्षा की कोटि में है। अब तो ऋषि वचन भी परीक्षा की कोटि में होने लगे।

आपने पिछले कुछ सूत्र के अनुशीलन में देखा होगा की स्वामी सत्यपति योग दर्शन के सूत्र का खंडन दयानंद के प्रमाण से कर देते है। कही कही दयानंद के प्रमाण से योग दर्शन सूत्र का अर्थ बदलने का प्रयास

किया गया और आर्य समजी लोग अपने आप को ऋषि भक्त कहते है। सौ बात की एक बात ये है की ये लोग ऋषि वचन को भी वही तक मानते है जहा तक वे दयानंद सिद्धांत के अनुकूल हो अन्यथा इनके दो प्रमुख हथियार है। १. उस ऋषि वचन का अर्थ बदलकर दयानंद सिद्धांत के अनुकूल कर दो, २. उसे प्रक्षिप्त कह दो

“इसलिये ये सिद्धियाँ परीक्षा कोटि में हैं। यदि कोई व्यक्ति प्रमाणों से उपर्युक्त सिद्धियों को सिद्ध कर देवे तो, हमें स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं है॥;[स्वामी सत्यपति, योग० 3.४२ भाष्य]

40. योग दर्शन में विचित्र सिद्धिया

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च॥ ४५॥

शब्दार्थ - **(ततः)** उस भूतजय से **(अणिमादि - प्रादुर्भावः)** अणिमा आदि सिद्धियाँ उत्पन्न होती हैं तथा **(काय-सम्पत्)** शरीर का सामर्थ्य बढ़ता है **(तद्- धर्म - अनभिघात : - च)** और योगी के कार्य में पृथिवी आदि भूतों के धर्म एक सीमा तक बाधा नहीं डालते।

व्या० भा० - तत्राणिमो भवत्यणुः। लघिमा लघुर्भवति। महिमा महान्भवति। प्राप्तिरङ्गुल्यग्रेणापि स्पृशति चन्द्रमसम्। प्राकाम्यमिच्छानभिघातः, भूमावुन्मज्जति निमज्जति यथोदके। वशित्वं भूतभौतिकेषु वशी भवत्यवश्यश्चान्येषाम्। ईशितृत्वं तेषां प्रभवाप्ययव्यूहानामीष्टे। यत्र कामावसायित्वं सत्यसङ्कल्पता यथा सङ्कल्पस्तथा भूतप्रकृतीनामवस्थानम्। न च शक्तोऽपि पदार्थविपर्यासं करोति। कस्मात्? अन्यस्य यत्रकामावसायिनः पूर्वसिद्धस्य तथाभूतेषु सङ्कल्पादिति। एतान्यष्टावैश्वर्याणि।

कायसंपद्वक्ष्यमाणा। तद्धर्मानभिघातश्च पृथ्वी मूर्त्या न निरुणद्धि योगिनः शरीरादिक्रियाम्, शिलामप्यनुविशतीति, नापः स्निग्धाः क्लेदयन्ति, नाग्निरुष्णो दहति, न वायुः प्रणामी वहति। अनावरणात्मकेऽप्याकाशे भवत्यावृतकायः, सिद्धानामप्यदृश्यो भवति॥ ४५॥

व्या० भा० हिंदी- उनमें से 'अणिमा' (वह है जिसमें) अणु होता है, 'लघिमा' = लघु होता है, 'महिमा' महान् होता है। 'प्राप्ति' वह है जिसमें अङ्गुलि के अग्रभाग से चन्द्रमा को छूता है। 'प्राकाम्य' का अर्थ है इच्छा का निर्बाध पूर्ण होना (जिससे) भूमि में (उसी प्रकार) तैरता और डूबता है जिस प्रकार पानी में (तैरता डूबता है) । 'वशित्व' = भूतों एवं भूतों से बने पदार्थों पर (उसका) वशित्व होता है और (वह) अन्यों के वश नहीं होता । 'ईशितृत्व' = उन (भूत एवं भौतिक पदार्थों) के उत्पत्ति प्रलय तथा स्थिति के क्रम का ईशन करने में समर्थ होता है। 'यत्रकामावसायित्व' (नामक सिद्धि) सत्यसङ्कल्पता कहलाती है। (उसकी प्राप्ति होने पर) जिस प्रकार का सङ्कल्प होता है उसी प्रकार का भूत एवं उनकी प्रकृतियों का (तन्मात्राओं का) अवस्था (=

स्थिति) होती है। **समर्थ होने पर भी पदार्थों को विरुद्ध (उल्टा) नहीं करता। क्यों ? पूर्व सिद्ध सत्यसङ्कल्प वाले ईश्वर का भूतों में उस प्रकार का सङ्कल्प होने से।** ये आठ ऐश्वर्य हैं।......

इस सूत्र में योगी को असंभव शक्तिया प्राप्त होने का वर्णन है

- पंच भूतो पर उसका अधिकार होता है।
- वह चन्द्रमा को उंगली से छू सकता है।
- भूतो पर अधिकार होने के कारन वह ईश्वर के समान प्रलय और निर्माण में समर्थ है। सामर्थ्य होते हुए भी वह ईश्वर के रचना के विपरित कुछ नहीं करता क्योकि इससे नियम भंग होता है। आदि

ये सब चित्त में नहीं हो रहा जबकि योगी के शरीर का सामर्थ्य है, सूत्र से स्पष्ट है **"अणिमादि प्रादुर्भावः काय-सम्पत्** =अणिमा आदि सिद्धियाँ उत्पन्न होती हैं तथा शरीर का सामर्थ्य बढ़ता है।;

आर्य समाजियों ने इस पर वही अपनी पुराणी चाल चली है। असंभव कथन देखकर अर्थ बदलने का प्रयास किया है- **"तद्धर्मानभिघात' भूमि योगी के स्थूल शरीर की गति को नहीं रोकती अर्थात् भूमि में स्थूल शरीर से योगी प्रवेश कर जाता है, यह सम्भव नहीं है। यदि बुद्धि से योगी भूमि में प्रवेश करता है तो यह परीक्षा कोटि में है।** इसी प्रकार योगी का स्थूल शरीर से पत्थर में प्रवेश करने की बात को समझ लेवें। यदि योगी के शरीर को जल नहीं गलाता है, अग्नि नहीं जलाती है ऐसा माना जाता है तो यह सम्भव नहीं है। योगी का शरीर जल की शीतलता को अग्नि की उष्णता को किसी सीमा तक अयोगी लोगों की अपेक्षा अधिक सह लेता है, ऐसा माना जाये तो यह ठीक है॥ [स्वामी सत्यपति परिव्राजक]

41. आयुर्वेद

इतिहासकारों के मुताबिक प्राचीन काल में वैदिक लोग देवता और भगवान से बीमारियों के ठीक करने के लिए प्रार्थना करते थे। ये लोग बीमारी को ठीक करने के लिए जादुई धार्मिक साधनों का उपयोग करते थे। मानव शरीर में होने वाली बीमारियों के लिए दैवी कारणों को वैदिक लोग जिम्मेदार ठहराते थे। मूल रूप से कोई वैज्ञानिक परंपरा उपचार करने की नहीं थी। उसके बाद आयुर्वेद आदि का उद्भव हुआ।

बीमारियों के उपचार करने का आयुर्वेद एक वैज्ञानिक और व्यवहारिक तरीका था। इसमे जादू टोना आदि का प्रयोग नगण्य था। [source]

आयुर्वेद की बहुत सी उपचार विधि आज भी प्रयोग की जाती है, कुछ जगहों पर ये अत्यंत लाभकारी है। परन्तु आयुर्वेद में बहुत सी बाते ऐसी लिखी है जो साध्य है, अवैदिक है और इसमे अवैज्ञानिक हास्यास्पद पाखंडपूर्ण उपचार भी शामिल है। आयुर्वेद से ऐसे ही उदाहरणों को यहाँ सबके लिए प्रस्तुत किया जा रहा है। हमारा लक्ष्य पाठक को ये बात समझाना है, की अर्युर्वेद में लिखी हर बात का अँधा समर्थन नहीं किया जा सकता है।

आयुर्वेद में दो प्रकार के उपचार विधि है. १. वृक्ष वनस्पति से, २. पशु पक्षी आदि के मांस से

प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बलवर्णौजसां च । स षट्सु रसेष्वायत्तः, रसाः पुनर्द्रव्याश्रयाः, द्रव्याणि पुनरोषधयः । तास्तु द्विविधाः-स्थावरा जङ्गमाश्च ॥ २८ ॥ तासां स्थावराश्चतुर्विधाः-वनस्पतयो, वृक्षाः, वीरुधः, औषधय इति । तासु अपुष्पाः फलवन्तो वनस्पतयः, पुष्पफलवन्तो वृक्षाः, प्रतानवत्यः स्तम्बिन्यश्च वीरुधः, फलपाकनिष्ठा ओषधय इति ॥ २९ ॥ [सुश्रुतसंहिता सूत्रथान १/२८-२९]

अर्थ- आहार प्राणियों का तथा इनके बल, वर्ण और ओज का मूल है। यह आहार छ रसों के अधीन है। रस द्रव्य के आधीन है, और औषधियाँ ही द्रव्य हैं । औषधियाँ दो प्रकार की हैं, यथा-स्थावर और जंगम ॥ २८ ॥

इनमें स्थावर औषधियाँ चार प्रकार की हैं-वनस्पति,वृक्ष, वीरुध और औषधि । इनमें से जिनमें पुष्प आये बिना फल आता है, वे वनस्पति कहाती हैं । जिनमें पुष्प और फल दोनों होते हैं, उनको वृक्ष कहते हैं । जो फैलनेवाली एवं गुल्म रूप (थम्बला रूप) होती हैं, वे वीरुध (बेल) कहाती हैं। जो फल के पकने तक ही अस्तित्व रखती हैं वे औषधि हैं।२९।

जङ्गमाः खल्वपि चतुर्विधाः - जरायुजाण्डजस्वेदजो- द्भिज्जाः। तत्र पशुमनुष्यव्यालादयो जरायुजाः, खगसर्प- सरीसृपप्रभृतयोऽण्डजाः, कृमिकीटपिपीलिकाप्रभृतयः स्वेदजाः इन्द्रगोपमण्डूकप्रभृतय उद्भिज्जाः ॥ ३० ॥[सुश्रुतसंहिता सूत्रथान १/३०]

अर्थ- जंगम औषधि भी चार प्रकार की हैं। यथा— जरायुज, अण्डज, स्वेदज और, उद्भिज । इन चारों में- पशु, मनुष्य, व्याल (हिंसक पशु) आदि जरायुज हैं। पक्षि, सर्प, अजगर आदि अण्डज हैं। कृमि, कीड़ा चिऊँटी आदि स्वेदज हैं। वीरबहूटी, मेंढक आदि उद्भिज्ज २ ॥ ३० ॥

आयुर्वेद में जन्म से वर्ण

ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य कुल उत्पन्न का उपनयन करा के पढ़ाए ।कई आचार्यों का मत है की उत्तम गुण वाले शुद्र वा अगर आयुर्वेद पठित कुल का हो तो उपनयन करा के पढ़ाए परंतु शुद्र को मंत्र संहिता वर्जित है।

ब्राह्मणक्षत्रियवश्यानामन्यतममन्वयवयःशीलशौर्यशौ- चाचार विनयशक्तिबल-मेधाधृतिस्मृतिमतिप्रतिपत्ति युक्तं त- नुजिह्वौष्ठदन्ताप्रमृजुवक्राक्षिनासं प्रसन्नचित्तवाक्चेष्ट क्लेश सहं च भिषक शिष्यमुपनयेत्; अतो विपरीतगुणं नोपनयेत् ॥३॥[सुश्रुतसंहिता सूत्रस्थान २/३]

जिस प्रकार के शिष्य का उपनयन करना चाहिये वह कहते हैं-

अर्थ- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य में से किसी एक जाति के, शुद्ध वंश में अथवा आयुर्वेद पढ़नेवाले कुल में उत्पन्न बालक या तरुण अवस्थावाले, शील-शूरता पवित्रता कुल तथा देश के व्यवहार को जाननेवाले, नम्रता, उत्साह शक्ति, बल, मेधा, स्मृति (स्मरण), मति, प्रतिपत्ति (उत्तमसूझ युक्त), पतली जिह्वा, पतले ओठ, पतले दाँतों के अग्रभागवाले, सरल मुख- नासिका-आँखोंवाले, प्रसन्नचित्त, मधुरवाणी, सुन्दर चेष्टा- वाले और कष्ट को सहन करनेवाले शिष्य का वैद्य उपनयन करे। इन उपरोक्त गुणों से विपरीत गुणवाले शिष्य का उप- नयन नहीं करना चाहिये। (अकुलीन को पढ़ाने का निषेध है। यथा-- **अकुलीनं त्यजेत् शिष्यम् । वियोनिं ग्लेच्छजाति च**)

ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपयनं कर्तुमर्हति राजन्यो द्वयस्य, वैश्यो वैश्यस्यैवेति। (शूद्रर्मापि कुलगुणसंपन्नं मन्त्र वर्जमुपनीत मध्यापयेदित्ये के) ॥५॥[सुश्रुतसंहिता सूत्रस्थान ५]

अर्थ- ब्राह्मण तीनों वर्गों का उपनयन कर सकता है, क्षत्रिय दो वर्णों का (अपना और वैश्य का), वैश्य वैश्य का ही उप- नयन कर सकता है। कई आचार्यों का मत है कि यदि शूद्र आयुर्वेद पाठ कुल में उत्पन्न हो, तथा- शौच शील आदि गुणों से युक्त हो तो, मन्त्र (ओं भूः स्वाहा) को छोड़कर इसको उपनयन देकर आयुर्वेद

पढ़ाना चाहिये। (चरक) में ब्राह्मण, राजन्य और वैश्य के लिये आयुर्वेद पढ़ने का विधान करके- फिर 'सामान्यतो वा धर्मार्थकामपरिग्रहार्थं सर्वैः'यह कह दिया है॥ ५॥

मुहूर्त देखकर उपचार

ततः प्रशस्तेषु तिथिकरणमुहूर्त नक्षत्रेषु दध्यक्षतान्न- पानरत्नैरग्नि विप्रान् भिषजश्चार्चयित्वा कृतबलिमङ्गल-स्वस्तिवाचनं लघु भुक्तवन्तं प्राङ्मुखमातुरमुपवेश्य, यंत्र- यित्वा, प्राङ्मुखो वैद्यो मर्मसिरास्नायुसन्ध्यस्थिधमनीः परिहरन्, अनुलोमं शस्त्र' निदध्यादापूयदर्शनात्, सकृ- देवापहरेच्छस्त्र माशु च, महत्स्वपि च पाकेषु द्वचंगुला-न्तरं त्र्यङ्गुलान्तरं वा शस्त्र पदमुक्तम् ॥७॥ [सुश्रुतसंहिता सुत्रस्थान अध्याय ४/६ एवं ५/७]

अर्थ- इसके पश्चात् श्रेष्ठ तिथि, करण, मुहूर्त्त, नक्षत्र में दधि, अक्षत, खान-पान, रत्नों से अग्नि, ब्राह्मणों और वैद्यों की पूजा करके, बलि , मंगल (गीतादि), स्वस्ति- वाचन (आशीर्वाद. उच्चारण) करके, रोगी को थोड़ासा अन्न खिलाकर, रोगी का मुख पूर्व दिशा में रखते हुए बिठाये। रोगी को भली प्रकार बाँध दे जिससे हिले नहीं। फिर वैद्य पश्चिम की ओर मुख करके — सिरा, स्नायु, सन्धि, अस्थि और धमनी को बचाकर लोगों के अनुकूल यथायोग्य शस्त्र को पूय (पीब) के निकलने तक गहरा चलाये। शस्त्र को एक बार ही और शीघ्रता से चलाना चाहिये। बहुत बड़े पाक में भी दो अंगुल या तीन अंगुल तक परिमित लम्बा शस्त्र का घाव करना चाहिये। घाव की गम्भीरता व्रण की अपेक्षा से है।

काले सांप की केचुली से उपचार

बच्चा अगर गर्भ के योनि में रुक जाए तो माता को काले साप की केचुली का धुआं सुंघाए।

गर्भसङ्गे तु योनिं धूपयेत् कृष्णसर्पनिर्मोकेण पिण्डी- तकेन वा, बध्नीयाद्धिरण्यपुष्पीमूलं हस्तपादयोः, धार-येत् सुवर्चला विशल्यां वा ॥११॥

अर्थ- गर्भ के योनि में रुक जाने पर (बाहर न आने पर वेदनायें बन्द हो जाने पर) काले सांप की केंचुली, अथवा मैनफल से योनि में धूरन करे। कलिहारी की जड़ को हाथ पैर में बाँधे।। हुलहुल या विशल्या (कलिहारी) को धारण करे।

गर्भधारण के अयोग्य स्त्री पुरुष

तन्त्रात्यशिता क्षुधिता पिपासिता भीता विमनाः शोकार्ता क्रुद्धाऽन्य च पुमासमिच्छन्ती मैथुने चातिकामा वा नारी न गर्भं धत्ते । विगुणां वा प्रजा जनयति । .... पुरुषेऽप्येत एव दोषा ।[चरकसंहिता शरीरस्थान अध्याय ८]

अर्थ- गर्भाधान के अयोग्य स्त्री- पुरुष - बहुत भोजन करने पर,प्यास लगी होने पर,अन्य वस्तु में मन लगे होने पर,भूखे होने पर, डरी होने पर, मन प्रसन्न न होने पर या शोकयुक्त, क्रुद्ध, अन्य पुरुष को चाहने वाली, अधिक सम्भोग को चाहने वाली स्त्री गर्भ धारण नही करती । यदि भाग्य से गर्भ रह भी जाये तो गुणरहित संतान उत्पन्न होती है । इसी प्रकार के पुरुष भी गर्भाधान क्रिया में अयोग्य होते हैं ।

बहुत भोजन करने पर, प्यास लगी होने पर, भूखे होने पर, क्रोध में होने पर, अधिक संभोग को चाहने वाली स्त्री,अन्य पुरुष को चाहने वाली स्त्री, अन्य वस्तु पर मन लगे होने पर गर्भ धारण नही करती है। यह पूरी फर्जी बात लिखी है, इसका कोई भी वैज्ञानिक आधार नहीं है।

मनचाहा संतान पाने की निंजा टेक्निक

स्नानात्प्रभृति युग्मेष्वहःसु संवसेतां पुत्रकामौ अयुग्मेषु दुहितृकामौ ॥ ६ ॥ [चरकसंहिता शरीरस्थान अध्याय ८ श्लोक ६]

अर्थ- स्नान करने के उपरान्त पुत्र की कामना से युग्म (दूसरे, चौथ, छठे आदि) दिनो मे और कन्या की कामना से अयुग्म (पहले, तीसरे, पाचवे सातवें आदि) दिनों में मैथुन करे ॥ ६ ॥

ऐसे यदि लिंग निर्धारण होती फिर क्या ही बात थी। यह तो ईश्वर नियम को ही चुनौती दी जा रही है।

या तु स्त्री श्यामं लोहिताक्षं व्यूढोरस्कं महाबाहु च पुत्रमाशासीत, या वा कृष्णं कृष्णमृदुदीर्घकेशं शुक्लाक्षं शुक्लदन्तं तेजस्विनमात्मवन्तम् एष एवानयोरपि होमविधिः, किन्तु परिबर्हवर्ज्यं स्यात्, पुत्रवर्णानुरूपस्तु यथाशीः परिबर्होऽन्यकार्यः स्यात् [चरकसंहिता शरीरस्थान अध्याय ८,19]

अर्थ- जो स्त्री श्यामवर्ण के, लाल आँखोंवाले, विस्तृत एवं उन्नत छातीवाले महाबाहु (लम्बी बाहुबाले) पुत्र को चाहती है अथवा जो कृष्णवर्ण के, काले मृदु और लम्बे बालोंवाले, श्वेत आँखवाले, श्वेत दाँतवाले, तेजस्वी आत्मवान् पुत्र को चाहती हैं, इन दोनों के लिये भी परिबर्ह को छोड़कर शेष होम की विधि पूर्वोक्त ही है । अर्थात् होम तो पूर्ववत् ही होगा, परन्तु. स्त्री के अभिलषित पुत्र के वर्ण के अनुसार परिबर्ह (आसन, बिछौना, फूल, भजन वस्त्र, गृह आदि) बनाना होगा । यदि श्याम पुत्र की इच्छा है तो परिबर्ह (आसन आदि

) श्याम वर्ण के होंगे, यदि कृष्ण पुत्र की इच्छा है तो परिबर्ह कृष्ण वर्ण का होना चाहिये । अर्थात् जैसे गौर पुत्रोत्पत्ति के लिये श्वेत वर्ण के आहार वस्त्र और अलङ्कार आदि का विधान है वैसे ही श्याम वा कृष्ण वर्ण के पुत्र की उत्पत्ति के लिये उसी २ वर्णवाले आहार आदि का विधान करना होगा ॥१९॥

"शूद्रा तु नमस्कारमेव कुर्याद्देवाग्निद्विजगुरुतपस्वि- - सिद्धेभ्यः ॥२०॥[चरकसंहिता शरीरस्थान अध्याय ८]

अर्थ- शूद्र स्त्री तो केवल मात्र देवता अनि द्विज (ब्राह्मण), गुरु तपस्वी तथा सिद्धों को नमस्कार मात्र ही करे । नमस्कार मात्र से ही उसे अभीष्ट वर्णवाले{रंगवाले} पुत्र की प्राप्ति होगी ॥२०॥

स्पष्ट है कि चरक को पुत्र कैसे पैदा होते हैं? उसका रंग, उसकी लम्बाई, उसकी आँखों का रंग, उसके बालों का रंग, ये सब कैसे निर्धारण होता है? पता नहीं था। बिस्तर पर सोने से पुत्र का रंग बदल जा रहा है और शुद्र को कहा है, की वो केवल द्विज को नमस्कार करके ही इच्छित संतान प्राप्त कर सकती है।

या या यथाविधं पुत्रमाशासीत तस्यास्तस्यास्तां पुत्राशिषमनुनिशम्य तांस्तान् जनपदान् मनसाऽनुपरिकामयेत्;ताननुपरिक्रम्य या या येषां जनपदानां मनुष्या- णामनुरूपं पुत्रमाशासीत सा सा तेषां तेषां जनपदानामाहारविहारोपचारपरिच्छदाननुविधत्स्वेति वाच्या स्यात् ; इत्येतत्सर्वं पुत्राशिषां समृद्धिकरं कर्म व्याख्यातं भवति ॥ २१॥[चरकसंहिता शरीरस्थान अध्याय ८ श्लोक ९]

और जो जो स्त्री जैसे जैसे पुत्र को चाहती हो उस उस स्त्री की उस पुत्रेच्छा को सुनकर उनर देशों को मन में सोचने के लिये कहे (वहाँ के जैसे पुरुष होते हैं) जो जो स्त्री जिन जिन देशों के मनुष्यों के अनुरूप पुत्र को चाहती हो उसे उनका मन में चिन्तन करते हुए उन २ देशों के आहार विहार व्यवहार तथा वस्त्रपरिधान के अनुसार ही कार्य करना चाहिये - ऐसा उस स्त्री को उपदेश करे । अभिप्राय यह है कि जैसे पुत्र को स्त्री चाहे वैसा ही मन में चिन्तन करे और उन २ देशों के आहार विहार आदि का सेवन करे । पुत्र की उत्पत्ति में मन का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है । यह पुत्र की कामनाओं की सिद्धि करनेवाले 1 कर्म की व्यवस्था हो गयी है ॥२१॥

प्रमेह रोग

इस रोग में मूत्र के साथ धातु या शक्कर गिरती है. इस के रोगी को दिए जाने वाले आहार का निर्देश करते हुए चरक संहिता में कहा गया है:

ये विष्किरा से प्रतुदा विहंगास्तेषां रसैर्जंगलजैर्मनौज्ञैः, यवौदनं रूक्षमथापि वाट्यन्मद्यात् ससक्तूनपि चाप्यपूपान्.- [चरक संहिता, चिकित्सा स्थानम् 6 / 19]

अर्थ- प्रमेह से पीड़ित रोगियों को विष्किर (तीतर की जाति का एक पक्षी) और प्रतुद (चोंच मारने वाले बाज, तोता, कौआ आदि) पक्षियों का मांसरस तथा जंगली पशु के मांस रस (शोरबा) के साथ यव का भात अथवा सूखा वाट्य, सत्तू और अपूप का आहार करना चाहिए.

यक्ष्मा रोग (क्षयरोग)

इस रोग से पीड़ित व्यक्ति को तीतर, मुर्गा आदि पक्षियों का घी में पकाया गया मांस खाने को देने का चरक ने विधान किया है :

लवणाम्लकटूष्णांश्च रसान्, स्नेहोपबृंहितान्.लवातित्तिरिदक्षाणां वर्तकानाञ्च कल्पयेत्. [चरकसंहिता चिकित्सा स्थानम् 8/66.]

अर्थ- लवा, तीतर, मुर्गा और बटेर के मांस को घृत में पका कर लवण, अम्ल, कटुरस से युक्त कर उन का गरमगरम रस यक्ष्मा के रोगियों को पीने को दें. अर्थात् लवा आदि पक्षियों के मांस को घी में पकाने के बाद सैंधव लवण, नीबू का रस, मिर्च मिला कर गरम मांसरस पीने के लिए देना चाहिए.

सपिप्पलीकं सयवं सकुलत्थं सनागरम्.दाडिमामलकोपेतं स्निग्धमाजं रसं पिबेत्.तेन षड् विनिवर्तन्ते विकाराः पीनसादयः [चरकसंहिता, चिकिसा स्थानम् 8/67-68.]

अर्थ- पीपर, जौ, कुत्थी, सौंठ, खट्टे अनारदाने का रस, आंवला- इन द्रव्यों के साथ प्रचुर मात्रा में घृत द्वारा साधित बकरे का मांसरस (शोरबा) पीना चाहिए. इस मांसरस के सेवन से पीनस आदि यक्ष्मा के 6 विकार शांत होते हैं।

चरक ने विभिन्न प्रकार के जानवर लोमड़ी, गीदड़, भालू, सांप,गैंडा, सिंह आदि के मांस खाने का वर्णन किया है। उसने यह भी कहा है कि हो सकता है कि रोगी यह मांस खाने से घृणा करें या ना खाएं तो नाम बदलकर के कहे की यह मोर का मांस है या मछली का मांस है। उसके बाद रोगी को खिला de उसको खिला दे।

शुष्यतां क्षीणमांसानां कल्पितानि विधानवित्., दद्यान्मांसादमांसानि बृंहणानि विशेषत:. शोषिणे बार्हिणं दद्याद्बर्हिशब्देन चापरान् . गृध्रानुलूकांश्चाषांश्च विधिवत् सूपकल्पितान् काकांस्तित्तिरिशब्देन वर्मिशब्देन चोरगान् भृष्टान् मत्स्यान्त्रशब्देन दद्याद् गण्डूपदानपि.लोपाकान् स्थूलनकुलान् बिडालांश्चोपकल्पितान् शृगालशावांश्च भिषक् शशशब्देन दापयेत्. सिंहानृक्षांस्तरक्षूंश्च व्याघ्रानेवंविधांस्तथा, मांसादान् मृगशब्देन दद्यान्मांसाभिवृद्धये. गजखड्गितुरंगाणां वेशवारीकृतं भिषक् दद्यान्महिषशब्देन मांसं मांसाभिवृद्धये.

मांसेनोपचितांगानां मांसं मांसकरं परम्, तीक्ष्णोष्णलाघवाच्छस्तं विशेषान्मृगपक्षिणाम् [चरक संहिता, चिकित्सास्थानम् 8 / 148-154]

अर्थ- यक्ष्मा रोग से पीड़ित को मोर का मांस खाने को देना चाहिए. इस के अलावा कच्चा मांस खाने वाले गिद्ध, उल्लू और चाष (नीलकंठ) के मांस को विधिपूर्वक बना कर **'यह मोर का मांस है'** ऐसा कह कर मरीज को देना चाहिए. कौए के मांस को तीतर का मांस बता कर, सांप के मांस को वर्मी मछली बतला कर, गंडूपद (केंचुआ) के मांस को मछली की भुनी हुई आंत' बता कर तथा इसी तरह लोमड़ी, बड़े नेवले, बिलार, गीदड़ के मांस को खरहे का मांस बता कर वैद्य खाने को दिलाए। सिंह, भालू, तरक्षु और व्याघ्र का मांस और इन के अलावा मांस खाने वाले दूसरे पशुओं के भी मांस 'यह मृग का मांस है' ऐसा कह कर, रोगी के मांस की वृद्धि के लिए, उसे देना चाहिए. इसी तरह हाथी, गैंडा, घोड़ा-इन के मांस को पका कर, कूट कर पीठी के समान बना कर "यह भैंसे का मांस है' यह कह कर उसे खाने को दे. जिन पशुओं व पक्षियों का मांस मांसाहार के कारण पुष्ट है, उन का मांस तीक्ष्ण, उष्ण, लघु होने के कारण यक्ष्मा के रोगियों के लिए उत्तम होता है।

जो मांस न खाना चाहे उसे गुप्त रीती से मांस खिलाओ-

मांसानि यान्यनभ्यासादनिष्टानि प्रयोजयेत् । तेषूपधा सुखं भोक्तुं तथा शक्यानि तानि हि ॥। १५५॥ जानञ्जुगुप्सन्नैवाद्याज्जग्धं वा पुनरुल्लिखेत् । तस्माच्छद्मोपसिद्धानि मांसान्येतानि दापयेत् ॥ १५६। ।[चरक संहिता, चिकित्सास्थानम् 8

अर्थ- जो मांस कभी खाये नहीं और अतएव यदि रोगी को प्रिय न हों तो उन्हें सुख से खिलाने के लिये गुप्त प्रयोग कराना पड़ता है। क्योंकि उनका सेवन उसी प्रकार हो सकता है। यदि रोगी जानता हो तो घृणावश या तो खायेगा ही नहीं या खाने के बाद उसे कै हो जायगी। अतः गुप्तरूप से सिद्ध किये मांस देने चाहिये ॥

यक्ष्मा के लिए गाय के मांस खाने का विधान

बर्हितित्तिरिदक्षाणां हंसानां शूकरोष्ट्रयोः खरगोमहिषाणां च मांसं मांसकरं परम्. [चरकसंहिता चिकित्सा स्थानानम् 8/158.]

अर्थात मोर, तीतर, मुरगा, हंस, सूअर, ऊंट, गधा, गाय और भैंस का मांस, के शरीर का मांस बढाने के लिए यक्ष्मा रोगी के लिए उत्तम है।

गव्यं केवलवातेषु पीनसे विषमज्वरे, शुष्ककासश्रमात्यग्निमांसक्षयहितं च तत्. – [चरक संहिता सूत्र स्थानम् 27/79-80]

अर्थ- अर्थात गोमांस वातजन्य रोगों, पीनस रोग, विषम ज्वर, सूखी खांसी, थकान, भस्मक रोग और मांसक्षयजन्य रोगों में हितकारी होता है.

यही है आयुर्वेद की उत्तम उपचार विधि और इसी विधि को लेकर के समाजी लोग लड़ते रहते हैं। अपने अंदर झांक के नहीं देखते हैं कि क्या क्या लिखा हुआ है। यही है वेदों[उपवेद] का विज्ञान?

ध्यान देने वाली बात ये है की लोमड़ी, गीदड़, भालू, सांप,गैंडा, सिंह आदि का मांस जब रोगी नहीं खाए तो चरक ने कहा की इसका नाम बदलकर मृग, मछली आदि का नाम कह के खिला दो। परन्तु गाय के मांस खाने में ऐसा कुछ नहीं लिखा। ऐसा प्रतीत होता है उस काल में लोग गौ मांस खाने को घृणा की दृष्टि से नहीं देखते होंगे। संभव है की यज्ञ में गौ आदि के बलि से ऐसा संभव हुआ हो।

मांस के साथ मद्य का भी इस्तेमाल करना चाहिए. चरक का कहना है :

मांसमेवाश्नतः शोषे माध्वीकं पिबतोऽपि च,नियतानल्पचित्तस्य चिरं काये न तिष्ठति .[चरक संहिता चिकित्सा स्थानम् 8 / 163]

अर्थ- मांस का आहार करते हुए (महुए के फूलों अथवा अंगूरों की बनी) माध्वीक नामक मद्य का सेवन करते हुए जो नियत (जितेंद्रिय) और उदार मन वाला होता है, उस व्यक्ति के शरीर में यक्ष्मारोग बहुत दिनों तक नहीं रहता, अर्थात शीघ्र छूट जाता हैं.

इतना ही नहीं, चरक ने सब प्रकार के मद्यों को पीने की छूट दी है. उस ने कहा है कि जो मद्य जिसे उचित हो, वही पी ले.

प्रसन्नां वारुणीं सीधमरिष्टानासवान्मधु, यथार्हमनुपानार्थं पिबेन्मांसानि भक्षयन्. [चरकसंहिता, चिकित्सास्थानम्, 8 / 165]

अर्थ- उपर्युक्त मांसों का भक्षण करते हुए प्रसन्ना, वारुणी, सीधु, अरिष्ट, आसव और मधु-इन में से जो मद्य उचित हो, मनुष्य उसी का अनुपान करे.

उन्माद रोग

उन्माद रोगी को भी भरपेट मांस खिलाने का चरकसंहिता में विधान है:

घृतमांसवितृप्तं वा निवाते स्थापयेत् सुखम् .त्यक्त्वा मतिस्मृतिभ्रंशं संज्ञां लब्ध्वा प्रमुच्यते. [चरक संहिता, चिकित्सा स्थानम्, 9/78]

अर्थ- उन्माद के रोगी को पुराना घृत और मांस भरपेट खिला कर तेज हवा से रहित घर में सुखपूर्वक सुलाना चाहिए. ऐसा करने से बुद्धि और स्मरणशक्ति की विकृति नष्ट हो कर उसे ज्ञान प्राप्त हो जाता है. ज्ञान होने से उन्माद रोग से उसे मुक्ति मिल जाती है।

उदर रोग

पेट के रोगों में जंगली पशुओं व पक्षियों के साथ 4-5 तरह की मद्य रोगी को पिलाने का विधान करते हुए चरक कहते हैं:

रक्तशालीन् यवान्मुद्गान्‌ जांगलांश्च मृगद्विजान्. पयोमूत्रासवारिष्टन्मधुसीधुं तथा सुराम्. [चरक संहिता, चिकित्सा स्थानम् 13/97-98]

अर्थ- उदर रोग में सेवनीय आहार द्रव्यः रोगी को रक्तशाली धान, यव, मूंग, जंगली मृग और पक्षी का मांस, दूध, मूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु, सीधु और सुरा देनी चाहिए.

रक्त अर्श

खूनी बवासीर को नष्ट करने के लिए जंगली मृग और पक्षियों के मांस का रस देना चाहिए.

धन्वविहंगमृगाणां रसो निरम्लः कदम्लो वा [चरक संहिता, चिकित्सास्थानम् 14/194]

अर्थ- जंगली मृग और पक्षियों के मांसरस में खट्टे अनार का रस मिला कर, कुछ अम्ल (खट्टा) बना कर या बिना खट्टा किए केवल मांसरस पिलाना चाहिए.

शशहरिणलावमांसैः कपिंजलैणेयकैः सुसिद्धैश्च, भोजनमद्यादम्लैर्मधुरैरीषत् समरिचैर्वा. दक्षशिखितित्तिरिरसैर्द्विककुलोपाकजैश्च मधुराम्लैः, अद्यादरतिवहेष्वर्शः स्वनिलो ल्बणशरीरः [चरकसंहिता, चिकित्सा स्थानम् 14 / 206-07]

अर्थ- 1. खरहा, हरिण, लवा, कपिंजल (गौरैया), एण (मृग विशेष) इन के मांस को विधिपूर्वक बना कर उस में अम्लरस, कुछ मधुर रस और मरिच का चूर्ण मिला कर भात के साथ खाए.

2. अथवा मुरगा, मोर, तीतर के मांस के साथ भात खाए.

3. अथवा ऊंट और लोमड़ी के मांस के साथ अन्न का सेवन करना चाहिए. दूसरे और तीसरे योगों में भी मांसरस में खट्टा और मीठा मिला देना चाहिए. ये तीनों नुसखे (योग) उन के लिए हैं जिन के शरीर में वात की प्रधानता हो और रक्त अधिक मात्रा में निकलता हो.

श्वास रोग

वातिक रोगी को घी, मांसरस आदि से तृप्त कराने का विधान करते हुए चरक कहते हैं:

वातिकान् दुर्बलान् बालान् वृद्धांश्चानिलसूदनैः,तर्पयेदेव शमनैः स्नेहयूषरसादिभिः [चरक संहिता, चिकित्सास्थानम् 17/90]

अर्थ- हिक्का (हिचकी) श्वास रोग से पीड़ित वातिक (वातप्रधान), दुर्बल, बालक और वृद्ध पुरुष हो तो उसे वातनाशक औषधियों का प्रयोग कराते हुए हिक्का श्वास को शांत करने वाले स्नेह, यूष, मांसरस आदि से तर्पण कराना चाहिए.

बर्हितित्तिरिदक्षाश्च जांगलाश्च मृगद्विजाः,दशमूलीरसे सिद्धाः कौलत्थे वा रसे हिताः [चरक संहिता, चिकित्सा स्थानम् 17/93.]

अर्थ- दुर्बल तथा वातप्रधान हिक्काश्वास के रोगियों को मजबूत करने के लिए मोर, तीतर, मुरगा, जंगली पशुपक्षियों के मांस को दशमूल या कुलथी के काढ़े में डाल कर पिलाना चाहिए.

खांसी में मांस रस

कास (खांसी) से यदि शरीर कमजोर हो गया हो तो लवा आदि पक्षियों के मांसरस का सेवन करें.

मांसोचितेभ्यः क्षामेभ्यो लावादीनां रसा हिताः [चरक संहिता चिकित्सा स्थानम् 18/141.]

गोबर व लीद

द्रव्याणां तु घृतोक्तानां क्षारोऽविमूत्रगालितः ॥२०॥ ग्राम्यसत्त्वशकृत्क्षारैः संयुक्तः साधितः शनैः । तत्रोषकादिरावापः कार्यस्त्रिकटुकान्वितः ॥२१॥ एष क्षारोऽश्मरीं गुल्मं शर्करां च भिनन्त्यपि ।[सुश्रुत संहिता, चिकित्सा स्थानम् 7/20-2]

अर्थ- घृतों के लिये कहे वर्गों के द्रव्यों को लेकर तिल नालों से जलाकर, इनको भेड़ के मूत्र में घोलकर छान लेवे । इसमें गाय- बकरी आदि ग्राम्य पशुओं के गोबर लीद आदि को जलाकर बनाया क्षार, मिलाकर इनको धीरे धीरे पकाये । पकाते समय इसमें ऊषकादिगण का प्रक्षेप और त्रिकटु मिला दे । यह क्षार अश्मरी को, गुल्म को, शर्करा को नष्ट करता है ॥ २०,२१॥

यहाँ गाय बकरी आदि पशुओं के लीद का उपयोग किया गया है।

भेड़ का मूत

तिळापामार्गकदलीपलाशयववल्कजः क्षारः पेयोऽविमूत्रेण शर्करानाशनः परः।

अर्थ- तिल, चिरचिट, केला, ढाक, जौ के तुष, इनका क्षार, भेड़ के मूत्र से पीना चाहिये। यह शर्करा(Sugar) को नष्ट करता है। (क्षार की मात्रा दो कर्ष या तीन कर्ष लेकर दो पल मूत्र से पीये)॥

पाटलाकरवीराणां क्षारमेवं समाचरेत्॥

अर्थ- पाटला और करवीर (कनेर) के क्षार को भी इसी प्रकार मेड़ के मूत्र से बरते॥२३॥

वदंष्ट्रायष्टिकाब्राह्मोकल्कं वाऽक्षसमं पिबेत्।

अर्थ - गोखरू, मुलैहठी और ब्राह्मी का कल्क एक कर्ष मात्रा में भेड़ के मूत्र से पीये।

सडकाख्यौ पेयौ वा शोभाञ्जनकमार्कवौ॥२४॥

अर्थ - पनवाड़, सुहांजना और भांगरा इनको भेंड़ के मूत्र से पीये॥[सुश्रुत संहिता, चिकित्सा स्थानम् 7,२२-२४]

हाथी की लीद

क्षारे सुदग्धे गजगण्डजे तु गजस्य मूत्रेण बहुस्नुते च, श्वित्रं प्रलिंपेदथ संप्रघृष्य तया ब्रजेदाशु सवर्णभावम्. [सुश्रुत संहिता, चिकित्सा स्थानम् 9/2-22]

अर्थ- हाथी की लीद को भली प्रकार जला कर बनाए क्षार को हाथी के मूत्र में घोल कर कई बार निथार लें... श्वित्र को घिस कर उस पर इन का लेप करें. इस से त्वचा के समान रंग आता है।

पशु की खाल की राख

त्वचा के एक रोग (पुंडरीक कुष्ठ,श्वित्र) में छालों के फूटने पर जो दवाई लगाई जाती है, उस में हाथी या चीते की खाल की राख डाली जाती है. सुश्रुत का कहना है:

हैप दग्धं चर्म मातंगजं वा भिन्ने स्फोटे तैलयुक्तं प्रलेपः - [सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा स्थानम् 9/6]

अर्थ- चीते या हाथी की खाल को जला कर उस की राख को आवर्त की जड़ से सिद्ध किए तेल में मिला कर छालों के फूटने पर लेप करें.

सांप की राख

फुलबहरी नष्ट करने के लिए सुश्रुत कहते हैं:

कृष्णस्य सर्पस्य मसी सुदग्धा बैभीतकं तैलमथ द्वितीयम्. 'एतत्समस्तं मृदितं प्रलेपात् श्वित्राणि सर्बाण्यपहंति शीघ्रम्. – [सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा स्थानम् 9/7]

अर्थ- काले सांप को अच्छी तरह से जला कर बनाई राख को बहेड़े के तेल में मिला कर लेप करने से सब प्रकार के श्वित्र (फुलबहरी रोग) नष्ट होते हैं.

बकरे व ऊदबिलाव के अंडकोष व वीर्य

वाजीकरण (सेक्स पावर बढ़ाने) के लिए जो नुस्खे सुश्रुत संहिता में अंकित हैं उन में बकरे और शिशुमार (ऊदबिलाव) के अंडकोशों का इस्तेमाल होता है. जानवरों तथा इन्सान के वीर्य को पीने का भी विधान किया गया है:

बस्ताण्डसिद्धे पयसि भावितानसकृत्तिलान्. शिशुमारवसापक्वा शुष्कुल्यस्तैस्तिलैः कृताः,यः खादेत् पुमान् गच्छेत् स्त्रीणां शतमपूर्ववत्. [सुश्रुत संहिता, चिकित्सा स्थानम् 26/18-19]

अर्थ- बकरे के अंडकोष से सिद्ध किए दूध में तिलों को बहुत बार भावित कर के दूध के अनुपात से खाएं. इन्हीं तिलों की बनाई कचौरियों को शिशुमार (ऊदबिलाव) की वसा (चरबी) में पका कर खाएं. जो पुरुष इस प्रकार करता है वह एक सौ औरतों में प्रथम सुरत (पहले संभोग) की तरह रमण करता है.

पिप्पलीलवणोपेते बस्ताण्डे क्षीरसर्पिषि, साधिते भक्षयेमद्यस्तु स गच्छेत् प्रमदाशतम्. [सुश्रुत संहिता, चिकित्सास्थानम् 26/20]

अर्थ- दूध से निकाले घी में पिप्पली और लवण के साथ बकरे के अंडकोशों को अंड सिद्ध कर के जो पुरुष खाता है वह एक सौ स्त्रियों से रमण कर सकता है.

बस्ताण्डे घृतसाधिते.पिप्पलीलवणोपेते बस्ताण्डे शिशुमारस्य वा खादेत्ते तु वाजीकरे भृशम्. कुलारकूर्मनक्राणामण्डान्येवं तु भक्षयेत्. महिषर्षभबस्तानां पिबेच्छुक्राणि वा नरः [सुश्रुत संहिता, चिकित्सा स्थानम् 26/25-27]

अर्थ- घी में तले हुए बकरे के या शिशुमार (ऊदबिलाव) नामक जंतु के अंडकोशों को पिप्पली और सैंधा नमक के साथ खाएं. ये अतिशय वाजीकर (सेक्स शक्ति बढ़ाने वाले) हैं. केकड़ा, कछुआ, नक्र (घड़ियाल) के अंडकोशों को भी इसी प्रकार खाएं अथवा भैंसे, बैल या बकरे के वीर्य को पीएं.

हजारो बाते आयुर्वेद में बिना सर पैर की लिखी हुई है। कुछ उदहारण यहाँ दिखाया गया है, अधिक आप आयुर्वेद में देख सकते है।

42. दयानंद और विधवा विवाह

आपने समाजियों के मुख से सुना होगा कि दयानंद सरस्वती ने विधवा विवाह का समर्थन किया परंतु सत्य केवल इतना नहीं। पूरी सच्चाई जानने के लिए स्वामी जी तथा समाजियों के पुस्तकों की ओर चलना चाहिए-

"मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी अपनी पत्रिका में लिखते हैं-'वृत्तान्त यह है कि यह महाराज बम्बई में उपदेश देते हैं (१) मूर्तियों को न पूजो (२) वेदों तथा शास्त्रों की तुलना में पुराण नगण्य हैं। (३) विधवाओं का पुनर्विवाह करो" [जीवनी लेखराम p249]

***"प्रश्न-** वेद के दृष्टिकोण से (बताइये कि) विधवा स्त्री अथवा विधुर पुरुष का (पुन:) विवाह होना उचित है या नहीं ? और यह कि अपनी स्त्री के जीवित रहते अथवा उसकी मृत्यु के पश्चात् दूसरा और तीसरा विवाह करने से पुरुष को कुछ दोष तो नहीं लगता ?*

उत्तर- विधवा स्त्री का पुनर्विवाह होना चाहिए और अपनी स्त्री के जीवित रहते हुए दूसरे विवाह का पात्र नहीं है; परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका अधिकार है कि वह पुन: विवाह चाहे करे या न करे। ऐसा ही अधिकार विधवा स्त्री को भी होना चाहिए" [जीवनी लेखराम p288]

"*विधवाओं का विवाह कर देना उचित है; यह कोई दोष की बात नहीं*"[जीवनी लेखराम 319]

"*प्रतिमा-पूजन, ठाकुरद्वारे, शिवालय आदि की प्रतिष्ठा करने को असत्कर्म ठहराते हैं और चाण्डाल आदि को भी वेदाध्ययन का अधिकारी बतलाते हैं। फिर **विधवाविवाह को श्रुतिसिद्ध ठहराते हैं"***[जीवनी लेखराम p344]

*"स्वामी जी ने कहा कि हमने ऐसा नहीं कहा, प्रत्युत यह कहा **कि विधवा का विवाह विधुर पुरुष से होना चाहिए ?** कुवारे से नहीं"*[जीवनी लेखराम 346]

*"क्योंकि आर्य इतिहासों में प्राय: स्वयं का ही वर्णन आता है। विधवा- विवाह का प्रचार केवल शूद्रों में था। द्विजों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों में नियोग का प्रचार था। **विधवा-विवाह से जो लोग विरोध करते हैं, उनकी पुष्टि करके विधवा-विवाह का खण्डन करने की मेरी इच्छा नहीं है।** पर यह अवश्य कहूँगा कि ईश्वर के समीप स्त्री-पुरुष दोनों बराबर है, क्योंकि वह न्यायकारी है, उसमें पक्षपात का लेश नहीं है। जब स्त्री- पुरुष दोनों बराबर हैं, क्योंकि वह न्यायकारी है, उसमें पक्षपात का लेश नहीं है। **जब पुरुषों को पुनर्विवाह करने की आज्ञा दी जावे तो स्त्रियों को दूसरे विवाह से क्यों रोका जावे।** प्राचीन आर्य लोग ज्ञानी, विचारशील और न्यायी होते थे। आजकल उनकी संतान अनार्य हो गई। **पुरुष अपनी इच्छानुसार जितनी चाहे उतनी स्त्रियाँ***

कर सकता है। *देश, काल, पात्र और शास्त्र का कोई बन्धन नहीं रहा। क्या यह अन्याय नहीं ? क्या यह अधर्म नहीं ?"* [उपदेश मंजरी 12]

" विधवा स्त्री होती, तो उसको नियोग की आज्ञा दी जाती थी और प्रायः विधवाएँ ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में प्राय: नियोग से निर्वाह होता था" [उपदेश मंजरी 12]

"वे एक या दो सन्तान पूर्व पति के ही समझे जाते हैं और उसी का नाम चलाते हैं। **आर्य लोगों में विधवा-विवाह की अपेक्षा नियोग अच्छा है ।** क्योंकि यदि विधवा-विवाह की आज्ञा मिल जावे, तो स्त्रियाँ अपने पतियों को विष देकर मारना आरम्भ कर दें और यदि पहले पति की जायदाद लेकर विधवा स्त्री दूसरा पति कर लेगी तो उसमें और उसके पूर्व पति के सम्बन्धियों में बहुत-से बखेड़े उठेंगे। जिस विधवा का विवाह होता था, वह शूद्रों में गिनी जाती थी।

विवाह में परस्पर स्त्री-पुरुषों की यह प्रतिज्ञा होती है कि दोनों के मन-चित आदि एक होंगे और वे कभी एक दूसरे के विरुद्ध कोई काम न करेंगे। बचपन में विवाह होने से भला लड़का-लड़की इन बातों को क्या जान सकते हैं और उन मन्त्रों का अर्थ करके कोई समझाता भी नहीं है । पण्डित लोग कहते हैं कि केवल मन्त्र के सुनने से पुण्य होता है, चाहे मन्त्र बोलने वाला उसका अर्थ समझे या न समझे। ब्राह्मण को दक्षिणा दे दी कि सब विधान ठीक-ठीक हो गया। वाह रे ! तुम्हारा सामाजिक प्रबन्ध । अन्धपरम्परा को देखकर तो मानना पड़ता है कि इससे विधवा- विवाह सब प्रकार अच्छा है" [उपदेश मंजरी 12]

"**यह बात कि "पहले तीन वर्णो में नियोग और शूद्रों में विधवा- विवाह" प्राचीन आर्य लोगों के विरुद्ध नहीं है।** इसकी पुष्टि ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ४० का मन्त्र २ देखने योग्य है। प्राचीन समय में गृहस्थ लोग अपनी स्त्रियों को अपने साथ रखा करते थे । यही विषय इस मन्त्र में वर्णन किया गया है। कोई-कोई पण्डित उस मन्त्र में "देवर" शब्द के अर्थ पति के छोटे भाई के करते हैं। यह ठीक नहीं, क्योंकि निरुक्त में दूसरे पति का नाम देवर बतलाया है । इसी सम्बन्ध में ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १८ का मन्त्र ८ भी द्रष्टव्य है । इसी प्रसङ्ग में एक बात और विज्ञापनीय है । वह यह है कि किन्हीं विशेष दशाओं में पति के जीते जी भी नियोग की आज्ञा मिलती थी । नियोग १० बार (तक) करने की आज्ञा थी। इसमें ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ८५ का मन्त्र ४५ का प्रमाण है" [उपदेश मंजरी 12]

"(प्रश्न) *स्त्री और पुरुष का बहु विवाह होना योग्य है वा नहीं?*

(उत्तर) *युगपत् न अर्थात् एक समय में नहीं।*

(प्रश्न) *क्या समयान्तर में अनेक विवाह होने चाहियें?*

*(**उत्तर**) हां जैसे-*

या स्त्री त्वक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्यागतापि वा। पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति॥ *मनु०॥*

जिस स्त्री वा पुरुष का पाणिग्रहणमात्र संस्कार हुआ हो और संयोग न हुआ हो अर्थात् अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष हो, उनका अन्य स्त्री वा पुरुष के साथ पुनर्विवाह होना चाहिये। किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में क्षतयोनि स्त्री क्षतवीर्य पुरुष का पुनर्विवाह न होना चाहिए" [सत्यार्थ प्रकाश,४]

समाजी परम्परा में देखा जाये तो जीवनी से अधिक प्रमाणिक सत्यार्थ प्रकाश है। दयानंद सरस्वती के किसी एक वक्तव्य को देख करके कुछ भी निर्णय नहीं करना चाहिए। विधवा संबंधी समस्त संदर्भों पर विचार कर के निर्णय करना चाहिए। स्वामी दयानन्द विधवा का विवाह तो मानते है, लेकिन अक्षत स्त्री पुरुषो(वह जिसका केवल विवाह हुआ हो sex न हुआ हो) का। अक्षत योनी पुरुष और अक्षत योनी स्त्री को दूसरा विवाह करने की आज्ञा दी है। क्षत स्त्री पुरुषो(जिसने विवाह के बाद sex कर लिया है।) का दूसरा विवाह तब संभव है जब वह शुद्र हो। ["जिस विधवा का विवाह होता था, वह शूद्रों में गिनी जाती थी" उपदेश मंजरी] किस स्त्री ने विवाह के बाद sex किया है या नहीं इसका पता लगाना प्राचीन काल में सर्वथा असंभव था इस पर पीछे नियोग प्रकरण में विचार किया जा चुका है। शायद स्वामी दयानंद को यह नियम देते समय इसका ज्ञान न रहा होगा

स्वामी दयानंद द्विज में पुनर्विवाह से उत्तम नियोग को मानते है। फिर समाजी लोग विधवा विवाह का प्रचार क्यों करते है? समाजी इसके लिए स्वामीदयानंद को श्रेय देना बंद करे। तुम कहते हो कि हम स्वामी दयानंद से प्रेरणा लेकर विधवाओ का विवाह करवाते है, जबकि ये झूठ है। स्पष्ट रूप से दयानंद का द्रोह है, जब तुम विधवाओ का नियोग करावोगे तभी सच्चे अर्थो में वह दयानंद की भक्ति होगी।

दयानंद मत खंडन - अब आगे प्रमाण से दिखाया जाता है की विवाहित स्त्री पुरुष में से किसी एक की मृत्यु हो जाने पर पुनर्विवाह की आज्ञा है।

सायन ने ऋग्वेद भाष्य(10.४०.२) में लिखा है " **[शयुत्रा]** शयने **[विधवेव]** यथा मृतभर्तका नारी **[देवरं]** भर्तृभ्रातरमभिमुखीकरोति" यहाँ देवर का अर्थ पति का छोटा भाई है।

देवर शब्द का अर्थ 'पति का भाई' और 'दूसरा पति' होता है। ऋषि दयानंद ने **'देवर: कस्माद् द्वितीयों वर उच्यते'** इस निरुक्त वचन का अर्थ करते हुए लिखा है **" जिस से नियोग करे उसी का नाम देवर है"** यह अर्थ सर्वथा गलत है। स्मृति में भी जिसको नियुक्त किया जाये उसे देवर नहीं कहा गया जबकि जिसको नियुक्त

किया जायेगा उसमे देवर और सपिंड आते है।**(या नियुक्तान्यतः पुत्र देवराद्वाप्यवाणतुयात्)** इन दोनों वाक्यों में भिन्नता को समझिये -

- **जिसे नियुक्त किया जाये वह देवर है।**
- **नियोग में देवर और सपिंड को नियुक्त किया जाता है।**

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यडनियुक्तया। प्रजेप्सिताधिगन्तव्या संतानस्य परिक्षये।। मनु 9 ५९॥

अर्थ- सन्तान के अभाव में विधिविधानपूर्वक नियोग के लिए नियुक्त स्त्री को देवर से या सपिण्डी (पति की छः पीढ़ियों में पति का छोटा या बड़ा भाई या स्वजातीय एवं उत्तम जाति का पुरुष) से शारीरिक सम्पर्क करके अभीष्ट सन्तान की प्राप्ति कर लेनी चाहिए।।

यहाँ देवर और सपिंड को अलग किया गया है इससे भी जिसके साथ नियोग हो वह देवर नहीं है। समाजी लोग देवर और दूसरा पति को एक ही समझते है। समाजियों के अनुसार जो नियुक्त होता है वही दूसरा पति है। यह बस दयानंद की बात है और कुछ नहीं। विधवा यदि दूसरा विवाह करे तो वह दूसरा पति भी देवर है।

सायन ने नियोग के अर्थ में वेदार्थ किया है, ऐसा समाजी लोग मानते है| जबकि सायन के भाष्य से भी नियोग की सिद्धि सर्वथा असंभव है| देवर=पति का छोटा भाई यदि भाई के पत्नी के साथ संयोग करता है केवल इतने मात्र से नियोग सिद्ध नहीं किया जा सकता है| जबकि समृति अनुसार पति की मृत्यु हो जाने पर पत्नी उसके भाई से विवाह कर संयोग कर सकती है| अब प्रमाण से दिखाया जाता है की इस मन्त्र का नियोग से दूर दूर तक लेना देना नहीं है| इस मन्त्र पर यास्क का मत जानने से पहले वेद मंत्र देखते है-

कुह॑ स्वि॒द्दो॒षा कुह॒ वस्तो॑र॒श्विना॒ कुहा॑भिपि॒त्वं क॑रत॒ः कुहो॑षतुः । को वां॑ शयु॒त्रा वि॒धवे॑व दे॒वरं॒ मर्यं॒ न योषा॑ कृणुते स॒धस्थ॒ आ ऋग 10.४०.२

अर्थ- हे **(अश्विना)** अश्विद्वय ! **(कुह स्वित् दोषा कुह वस्तोः)** तुम दोनों रात्रि में कहां और दिनके समय कहां जाते हो ? **(कुह अभिपित्वं करतः)** कहां समय बिताते हो ? **(कुह ऊषतुः)** कहां वास करते हो ? **(शयुत्रा देवरं विधवा इव)** जैसे विधवा स्त्री शयनस्थान में द्वितीय वर{देवर} को बुलाती है **(सघस्थे मये योषा न)** और कामिनी(युवती) अपने पति का समादर करती है, **(वां कः आ कृणुते)** वैसे ही यज्ञ में आदर के साथ तुम्हें कौन बुलाता है ? ॥ २ ॥

समाजीयो को जहाँ देवर और विधवा शब्द दिखता है, दिमाग में एक ही बात आती है नियोग। जबकि यहाँ देवर उसी विधवा का दूसरा पति है नियोग के लिए नियुक्त पुरुष नहीं। विधवा का पुनर्विवाह श्रुति सम्मत है ये आगे दिखाया जायेगा

क्व स्विद्रात्रौ भवथः । क्व दिवा । काभिप्राप्तिं कुरुथः । क्व वसथः । को वां शयने विधवे देवरम् । [देवरः कस्मात् । द्वितीयो वर उच्यते ।] विधवा विधातृका भवति । विधवनाद्वा । विधावनाद्वेति चर्मशिराः । अपि वा धव इति मनुष्यनाम । तद्वियोगाद्विधवा । देवरो दीव्यतिकर्मा । मर्यो मनुष्यो मरणधर्मा । योषा यौतेः । श्राकुरुते सस्थाने । nirukta 3.15

अर्थ- (क्व स्वित्) कहां रात्री में थे, कहां दिन में, कहां प्राप्ति वा अभिगमन करते हो । कहां वसते हो । कौन तुम दोनों को **(शयने)** शय्या पर विधवा के समान देवर को । [**देवरः कस्मात् । द्वितीयो वर उच्यते** -देवर किस कारण से, द्वितीय वर कहा जाता है] विधवा **(वि+धातृका)** विना पालन पोषण करने वाले के होती है । **(वि+धवनात्)** विशेष कम्पन के कारण से । [पति के वियोग से कांपती रहती है ।] **(वि + धावनात्)** विशेष इधर उधर दौड़ने से, यह चर्मशिराः[आचार्य कहता है ।] और भी, धव यह मनुष्य का नाम [है ।] उस **[मनुष्य=**पति] के वियोग से विधवा । देवर = खेलने = रति-क्रीड़ा अर्थ वाला [है ।] **मर्यः** = मनुष्य = मरणधर्मा [है ।] **योषा** = यौति से [मिलती है, सङ्गत करती है] **(कुरुते)** अपनी ओर करती है **(सहस्थाने)** साथ [ठहरने के] स्थान में ।

देवर कौन है उसको बताते है **"देवरो दीव्यतिकर्मा" -** देवर खेलन अर्थवाला है। यहाँ खेलने से तात्पर्य है रति क्रीडा। यहाँ पति अर्थ ही होगा रति सुख पति के अधिकार में आता है, नियोग के लिए नियुक्त के अधिकार में नहीं । **"देवरः कस्मात् । द्वितीयो वर उच्यते"** यहाँ देवर को वर कहा है नियुक्त पुरुष को वर किस शास्त्र में कहा गया है? वर तो विवाहित पुरुष होता है नियुक्त पुरुष नहीं

यहाँ पति उस(विधवा) साथ रति कर रहा है वह रति संतान प्राप्ति के लिए किया जा रहा है, नियोग के लिए किया जा रहा ऐसा कोई उल्लेख नहीं है, इसीलिए समान्यत: विवाहित पति का ग्रहण होगा क्योकि विशिष्ट का कथन होता है सामान्य का नहीं। नियोग का मुख्य प्रयोजन ही संतान की प्राप्ति है लेकिन इस वेदमंत्र के आगे पीछे कही भी संतान प्राप्ति की बात नहीं है स्पष्ट है यह विवाह अर्थ में है। सायन ने देवर शब्द से पति का छोटा भाई किया है और उसने निरुक्त का वचन भी दिया जो भिन्न अर्थ प्रदर्शित करते है। यास्क ने देवर का अर्थ छोटा भाई न लेकर दूसरा पति अर्थ लिया है। अर्थ दोनों ही उचित है|

विधवा का पुनर्विवाह श्रुति सम्मत है यह देखने के बाद उपरोक्त वेदार्थ में संशय नहीं होना चाहिए क्योकि जब पुनर्विवाह श्रुति अनुकूल है फिर नियोग क्यों?

या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दतेपरम्। पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः॥ Ath/9.5.28॥

अर्थ- **(या)** जो स्त्री **(पूर्वम् पतिम्)** पहिले पति को **(वित्त्वा)** प्राप्त कर, **(अथ)** पुनः {पहले पति के मृत्यु पश्चात्} **(अन्यम्)** उससे भिन्न **(अपरम्)** दूसरे पति को **(विन्दते)** प्राप्त करती है, **(तौ)** वे दोनों **(पञ्चौदनम् अजम् च ददात:)** पञ्चेन्द्रिय भोगों तथा निज आत्माओं को समपर्ण करके **(न वियोषत:)** परस्पर से वियुक्त नहीं होते।*

समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः । योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ Ath/ 9.5.28

अर्थ- (पुनर्भुवा) "पुन: पत्नी " होने वाली के साथ {अक्षता च क्षता चैव पुनर्भु: संस्कृता पुनः इति याज्ञवल्क्यस्मृति:} **(अपर: पति)** यह दूसरा पति **(समानलोकः)** एक ही गृहस्थ लोक में वास करने वाला **(भवति)** हो जाता है, **(य:)** जोकि **(पञ्चौदनम्)** निज पञ्चेन्द्रिय भोगों को, **(अजम्)** और निज आत्मा के, (दक्षिणाज्योतिषम्) विवाहनिमित्त दक्षिणा के समय एक नई ज्योति रूप में **(ददाति)** पत्नी के प्रति देता है।

हे नारि त्वं गतासुं गतप्राणमेतं पतिमुपशेष उपेत्य शयनं करोषि । उदीर्ष्वास्मात्पतिस- मीपादुत्तिष्ठ । जीवलोकमभिजीवन्तं प्राणिसमूहमभिलक्ष्यैहि आगच्छ । त्वं हतस्तग्राभस्य पाणिग्राहवतो दिधिषोः पुनर्विवाहेच्छोः पत्युरेतत् जनित्वम् जायात्वमभिसम्बभूवाऽभिमुख्येन सम्यक् प्राप्नुहि तैत्तिरीयारण्यक ६ । १ । १४

भाषार्थ - हे नारि ! तू इस मृतपति के पास लेटी है। इस पति के समीप से उठ। जीवित पुरुषों का विचार कर, आ और तू हाथ पकड़नेवाले पुनर्विवाह की इच्छा करनेवाले इस पति को जायाभाव (स्त्रीभाव) से अच्छी तरह प्राप्त हो।

जिस प्रकार स्मृति में नियोग का स्पष्ट वर्णन है, वैसा कुछ वेदों में अभी तक मेरी दृष्टि में नहीं आया। मेरी जानकारी के अनुसार नियोग शब्द समाजी भाष्य के अलावा किसी और भाष्य में प्राप्त नहीं होता। समाजी लोग जहाँ पर भी वेदों में 'विधवा' 'देवर' शब्द आता है वहाँ से नियोग अर्थ निकाल देते है।

ऋग्वेद - मण्डल » 10; सूक्त » 85; मन्त्र » 45 के भाष्य में ऋषि दयानंद ने नियोग घुसा रखा है। जबकि इस वेद मंत्र का नियोग से दूर दूर तक लेना देना नहीं है। समाजी लोग इसका अर्थ जानने की चेष्टा भी नहीं करते बस दयानंद पर अँधा भरोसा करते है, क्योकि वो ऋषि है। मंत्र देखिये-

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु । दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि

अर्थ- हे **(इन्द्र)** इन्द्र ! **(त्वं इमां सुपुत्रां सुभगां कृणु)** तू इसको उत्तम पुत्रो से युक्त और सोभाग्यशाली कर। **(अस्यां दश पुत्रान् आ धेहि)** इसको दस पुत्र प्रदान कर। **(पतिं एकादशं कृधि)** और पतिको लेकर इसे ग्यारह व्यक्तिवाली बना ॥ ४५ ॥

यहाँ तो विधवा या देवर शब्द भी नहीं है लेकिन हमारे ऋषि ने यहाँ से भी नियोग निकाल दिया मतलब ये है की वेद मंत्र में नियोग हो या नहीं स्वामी जी जब चाहे जिस मन्त्र से चाहे नियोग निकाल देते है। उदहारण देखिये –

स्वामी जी को इस वेद मन्त्र [अथर्ववेद 14; 2; 18] में भी नियोग दिख गया। सत्यार्थ प्रकाश[समुल्लास ४] में देख लो ग्रन्थ विस्तार के भय से यहाँ नहीं दे रहा।

अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः। प्रजावतीवीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥

अर्थ- [अदेवृघ्नी] देवर का नाश न करनेवाली, **[अपतिघ्नी]** पतिका घात न करनेवाली, **[पशुभ्यः शिवा]** पशुओं का हित करनेवाली, **[सुयमा सुवर्चाः]** उत्तम नियमों से चलनेवाली और उतम तेज से युक्त **[प्रजावती वीरसूः]** संतानयुक्त, वीर पुत्र उत्पन्न करनेवाली **[देवृकामा स्योना]** पति के घर में देवर रहें ऐसी कामना करनेवाली सुखदायिनी तू **[इमम् गार्हपत्यम् अग्निम् सपर्य]** इस गार्हपत्य अग्नि पूजा कर ॥ १८ ॥

सोम: प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः । तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ 10.८५.४०

अर्थ- (सोमः प्रथमः विविदे) सोम ने सबसे प्रथम तुम्हें प्राप्त किया **(गन्धर्वः उत्तरः विविदे)** उसके अनन्तर गन्धर्व ने प्राप्त किया। **(तृतीयः अग्निः)**तीसरे अग्नि ने तुम्हे प्राप्त किया **(तुरीयः मनुष्यजाः ते पतिः)** चौथा मनुष्य तेरा पति है ॥ **४० ॥**

***[सोम], सोमशब्दः रसार्थे प्रयुक्तः अस्ति** (ऋ 3.४८.१)* ***। 'सोम' इति मन्त्रे रसः । कः रसः? यौवनस्य रसः अस्ति। सोम यौवनपूर्णा कन्या इत्यर्थः [गन्धर्वः] विद्वान् गन्धर्वः**(यजु० 32.9),* ***गां वेदवाचं धारयति, गां वेदवाचं धारयति विचारयतीति गन्धर्वः वेदान्तवेत्ता विद्वान् पण्डितः**(महीधर),* ***[अग्निः] अग्नेः समानं प्रकाशं सम्पन्ना। किमर्थं? - ज्ञानप्रकाशेन सम्पन्ना वा विवाहकाले कन्या अग्निना शुद्धीकृता भवति। तथा च यास्क "अग्निः पवित्रमुच्यते"**(nirukta5/3)*

ब्रह्ममुनि का अर्थ देखो -

अर्थ- (ते) हे कन्या ! तेरा **(प्रथमः)** प्रथम पालक **(सोमः-विविदे)** सोमधर्मयुक्त रजोधर्म तुझे प्राप्त होता है **(उत्तरः)** इसके उत्तर पालक **(गन्धर्वः)** रश्मि धर्मवाला सूर्य प्राप्त करता है **(तृतीयः)** तीसरा पालक (अग्निः) यज्ञाग्नि प्राप्त करता है **(तुरीयः)** चतुर्थ पालक **(ते मनुष्यजाः)** तेरा मनुष्यजाति में उत्पन्न पति है ॥४०॥

स्वामी ब्रह्ममुनि ने भी नियोग अर्थ नहीं किया यहाँ नियोग अर्थ असंभव है, परन्तु समाजियों को नियोग इतना प्रिय है की हर मन्त्र में नियोग घुसाते है, हमारे ऋषि दयानंद ने यम यमी संवाद में भी नियोग[सत्यार्थ प्रकाश ४] दिखा रखा है –

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि। उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्॥ ऋ 10.10.10

[यम कहता है- **(ता उत्तरा युगानि घा आगच्छान्)** वे श्रेष्ठ युग पर्व भविष्य में आ जायेंगे **(यत्र)** जिसमें **(जामयः)** भगिनियां **(अजामि कृणवन्)** बन्धुत्वके विहीन भ्राताको पति बनावेगी। इसलिये हे **(सुभगे)** सुन्दरी ! **(मत् अन्यं पतिं इच्छस्व)** मुझसे दूसरेको पति बनानेकी इच्छा कर; तू **(वृषभाय बाहुं उप बर्बृहि)** वीर्य सेवन करने में समर्थ बाहु का आश्रय ले॥ १०॥

स्वामी जी के अतरंगी भाष्य

वेद मंत्र (सोम: प्रथमो…ऋग 10.८५.४०,सत्यार्थ प्रकाश, ४) का अर्थ करते हुए लिखते है –

(सोम:)= सुकुमारतादि गुणयुक्त होने से सोम, जो दूसरा नियोग होने से

(गन्धर्व:)= एक स्त्री से संभोग करने से गन्धर्व,

(तुरीय:) = चौथे से लेके ग्यारहवें तक नियोग से पति होते हैं वे

(इमां त्वमिन्द्र)= इस मन्त्र में ग्यारहवें पुरुष तक स्त्री नियोग कर सकती हे, वैसे पुरुष भी ग्यारहवीं स्त्री तक नियोग कर सकता है।

इस प्रकार के वेद भाष्य को समाजी सबसे अच्छा बताते है, वेद मंत्र में आये शब्दों से तो स्वामी जी को कुछ मतलब ही नहीं बस अपने मन से कुछ से कुछ अर्थ किये जा रहे है। समाजियों को जहा से मन होता है वहा से नियोग निकाल देते है। समाजी लोग बताये की महा ऋषि दयानंद ने कौन से व्याकरण अनुशासन तथा कौन से निरुक्त शास्त्र से इस प्रकार का अतरंगी अर्थ किया है।

इस मन्त्र का नियोग से दूर दूर तक कोई लेना देना नहीं है, समाजियों को नियोग अपने दिमाग से हटाना चाहिए। अब स्मृतियों में नियोग का निषेध देखो-

नान्यस्मिन् विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः ।अन्यस्मिन् हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युः सनातनम् [manusmriti 9.64]

द्विजातियों को चाहिए कि वे विधवा स्त्री का देवर आदि अन्य पुरुष से नियोग न करावें क्योंकि पुरुष से नियोग कराकर वे **एक पतिरूप सनातन पातिव्रत्य धर्म को नष्ट करते हैं॥**

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्व चित्। न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः ६५

क्योंकि विवाह विषयक मन्त्रों में कहीं भी नियोग की चर्चा नहीं की गई है। न ही विवाह विषयक शास्त्रों में विधवा स्त्री के पुन: विवाह का उल्लेख ही किया गया है।। ६५ ।।(वेद मंत्रो में पुन: विवाह का उल्लेख है। ऊपर प्रमाण सहित दिखाया गया है। श्लोक का दूसरा वाक्य गलत है। श्लोक 69 में स्वयं मनु से देवर से दूसरा विवाह करने की आज्ञा दी है।)

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः । मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति ॥ ६६

यद्यपि राजा वेन के शासनकाल में मनुष्यों में नियोग का विधान कहा गया तथापि विद्वान द्विजों द्वारा नियोग **पशुधर्म** कहकर ही विशेषरूप से निन्दित किया गया है।। ६६।।

स महीमखिलां भुञ्जन् राजर्षिप्रवरः पुरा । वर्णानां सङ्करं चक्रे कामोपहतचेतनः ॥ ६७ ॥

क्योंकि प्राचीन समय में सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य करता हुआ राजर्षियों में अग्रणी राजा वेन काम से नष्ट बुद्धि वाला होकर वर्णसंकर सन्ततियों को उत्पन्न करने लगा।। ६७।।

ततः प्रभृति यो मोहात् प्रमीतपतिकां स्त्रियम् । नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः ॥ ६८ ॥

अत: तभी से लेकर जो व्यक्ति अज्ञानवश मृत्पति वाली विधवा स्त्री को सन्तान के लिए नियोगक्रिया हेतु प्रेरित करता है। साधु लोग उसकी विशेषरूप से निन्दा करते हैं।। ६८ ।।

यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः । तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥ ६९ ॥

वाग्दान (सगाई) की रस्म पूर्ण करने पर जिस कन्या का पति मर जाए उस कन्या को पति का छोटा भाई (देवर) इस विधानपूर्वक (विवाह विधि द्वारा) प्राप्त कर लेवे।। ६९ ।।

समाजी लोग यहाँ पर मिलावट बोल के भाग जाते हैं और कहते हैं कि यहाँ पर विरोध है, जबकि यहाँ पर कहीं कोई प्रकरण के अनुसार विरोध नहीं है। ऊपर नियोग के विषय में बताया गया। उसके बाद नियोग का निषेध कर रहे हैं। क्यों? क्योंकि ये कहते हैं कि राजा वेन के काल में नियोग कहा गया था और उसने नियोग के कारण काम से आसक्त होकर के वर्णसंकर संतान पैदा करने लगा। इसलिए ऋषि साधु लोग नियोग की निंदा करते हैं। नियोग उत्तम नहीं। अतः बाद में स्मृति ने निर्णय दिया कि देवर से नियोग ना करके देवर से उसका विवाह करा दिया जाए। इससे क्या समझ आया की नियोग से विवाह सर्वथा उत्तम है।

जैसे मांस भक्षण से पाप होता है उसी प्रकार नियोग से व्यभिचार फैलकर पाप का प्रचार होता है। परन्तु जिस प्रकार कोई शाकाहार पदार्थ उपलब्ध न होने पर अपनी प्राण की रक्षा के लिए मांस खाया जाता है उसी प्रकार जब कोई मार्ग शेष ना बचे तब नियोग अंतिम मार्ग के रूप में समझना चाहिए।

43. ऋषि परासर और व्यास का धर्म विरुद्ध कृत्य

पराशर को ऋषि कहा जाता है| ऋषियों के लिए धर्म नियमो का पालन करना प्रथम कर्तव्य है| क्योकि सामान्य जन श्रेष्ठो का ही आचरण करते है| शास्त्रों को अच्छी प्रकार से समझना, नए नए शास्त्रों की रचना करना लोक सामान्य में धर्म, निति और ज्ञान का प्रचार करना ऋषियों और विद्वानों का कार्य है, इसीलिए उनके आचरण का उत्तम होना आवश्यक है| गीता में श्री कृष्ण कहते है-

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ 3.२१

अर्थ- श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा - वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्यसमुदाय उसी के अनुसार बरतने लग जाता है॥२१॥

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन। नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥3.२२

अर्थ- हे अर्जुन! मुझे इन तीनों लोकों में न तो कुछ कर्तव्य है और न कोई भी प्राप्त करनेयोग्य वस्तु अप्राप्त है, तो भी मैं कर्ममें ही बरतता हूँ॥ २२॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः। मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ 3.२३

अर्थ- क्योंकि हे पार्थ! यदि कदाचित् मैं सावधान होकर कर्मोंमें न बरतूं तो बड़ी हानि हो जाय; क्योंकि मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं॥ २३॥

इसलिए विद्वान् धर्मज्ञ पुरुषो को अपने सभी कार्य धर्मानुसार करना चाहिए| अब महाभारत(आदि पर्व, १०४) का एक प्रसंग देखिये-

सा कदाचिदहं तत्र गता प्रथमयौवनम्। अथ धर्मविदां श्रेष्ठः परमर्षिः पराशरः॥ ७॥ आजगाम तरीं धीमांस्तरिष्यन् यमुनां नदीम्। स तार्यमाणो यमुनां मामुपेत्याब्रवीत् तदा॥ ८। सान्त्वपूर्वं मुनिश्रेष्ठः कामार्तो मधुरं वचः।उक्तं जन्म कुलं मह्यमस्मि दाशसुतेत्यहम्॥ ९॥

अर्थ- 'एक दिन मैं उसी नावपर गयी हुई थी। उन दिनों मेरे यौवन का प्रारम्भ था। उसी समय धर्मज्ञों में श्रेष्ठ बुद्धिमान् महर्षि पराशर यमुना नदी पार करने के लिये मेरी नावपर आये। मैं उन्हें पार ले जा रही थी, तबतक वे मुनिश्रेष्ठ काम पीड़ित हो मेरे पास आ मुझे समझाते हुए मधुर वाणी में बोले और उन्होंने मुझसे अपने जन्म और कुलका परिचय दिया। इसपर मैंने कहा- 'भगवन्! मैं तो निषादकी पुत्री हूँ'॥ ७–९॥

तमहं शापभीता च पितुर्भीता च भारत। वरैरसुलभैरुक्ता न प्रत्याख्यातुमुत्सहे॥ १०॥

अर्थ- 'भारत! एक ओर मैं पिताजीसे डरती थी और दूसरी ओर मुझे मुनिके शापका भी डर था। उस समय महर्षिने मुझे दुर्लभ वर देकर उत्साहित किया, जिससे मैं उनके अनुरोधको टाल न सकी ॥ १० ॥

अभिभूय स मां बालां तेजसा वशमानयत् । तमसा लोकमावृत्य नौगतामेव भारत ॥ ११ ॥ मत्स्यगन्धो महानासीत् पुरा मम जुगुप्सितः ।तमपास्य शुभं गन्धमिमं प्रादात् स मे मुनिः ॥ १२ ॥

अर्थ- 'यद्यपि मैं चाहती नहीं थी, तो भी उन्होंने मुझ अबलाको अपने तेजसे तिरस्कृत करके नौकापर ही मुझे अपने वशमें कर लिया। उस समय उन्होंने कुहरा उत्पन्न करके सम्पूर्ण लोकको अन्धकारसे आवृत कर दिया था। भारत ! पहले मेरे शरीरसे अत्यन्त घृणित मछलीकी-सी बड़ी तीव्र दुर्गन्ध आती थी। उसको मिटाकर मुनिने मुझे यह उत्तम गन्ध प्रदान की थी ॥ ११-१२ ॥

यदि पराशर कामातुर थे{**कामार्तो मधुरं वचः**} तो उन्हें विवाह कर लेना चाहिए, ऐसे किसी कन्या के साथ नाव पर जा कर के शारीरिक सम्बन्ध बनना कहा तक निति संगत है? जबकि सत्यवती की इच्छा नहीं फिर भी उसको अपने वश में कर के उसके साथ sex करना कहा तक धर्मानुकुल है? सत्यवती पराशर को रोक नहीं सकी क्योकि उसको डर था की कही मुझे ऋषि पराशर श्राप न देदे | यह विशुद्ध रूप से पाप है, व्यभिचार है| वेदों में व्यभिचार को पाप और निन्दित किया गया है|[अथर्वेद २०.96.१५-16]; पराशर ने वेद विरुद्ध कार्य किया है|

जब विचित्रवीर्य का निधन हो जाता है, तब हस्तिनापुर पर संकट छा जाता है। क्योंकि हस्तिनापुर का कोई उत्तराधिकारी नहीं था। तब माता सत्यवती अपने पुत्र व्यास को नियोग के लिए कहते है| जब व्यास नियोग के लिए जाते है, तब देखिये-

तस्य कृष्णस्य कपिलां जटां दीप्ते च लोचने । बभ्रूणि चैव श्मश्रूणि दृष्ट्वा देवी न्यमीलयत् ॥ ५ ॥

व्यासजीके शरीरका रंग काला था, उनकी जटाएँ पिंगलवर्णकी और आँखें चमक रही थीं तथा दाढ़ी-मूँछ भूरे रंगकी दिखायी देती थी। उन्हें देखकर देवी कौसल्याने (भयके मारे) अपने दोनों नेत्र बंद कर लिये ॥ ५ ॥

सम्बभूव तया सार्धं मातुः प्रियचिकीर्षया । <u>भयात्</u> काशिसुता तं तु नाशक्नोदभिवीक्षितुम् ॥ ६ ॥

माताका प्रिय करनेकी इच्छासे व्यासजीने उसके साथ समागम किया; परंतु काशिराजकी कन्या भयके मारे उनकी ओर अच्छी तरह देख न सकी ॥ ६ ॥

सापि कालेन कौसल्या सुषुवेऽन्धं तमात्मजम् । पुनरेव तु सा देवी परिभाष्य स्नुषां ततः ॥ १३ ॥ ऋषिमावाहयत् सत्या यथा पूर्वमरिंदम । ततस्तेनैव विधिना महर्षिस्तामपद्यत ॥ १४ । अम्बालिकामथाभ्यागादृषिं दृष्ट्वा च सापि तम् । विवर्णा पाण्डुसंकाशा समपद्यत भारत ॥ १५ ॥

प्रसवका समय आने पर कौसल्या ने उसी अन्धे पुत्रको जन्म दिया। जनमेजय ! तत्पश्चात् देवी सत्यवती ने अपनी दूसरी पुत्रवधू को समझा-बुझाकर गर्भाधान के लिये तैयार किया और इसके लिये पूर्ववत् महर्षि व्यासका आवाहन किया। फिर महर्षिने उसी (नियोगकी संयमपूर्ण) विधिसे देवी अम्बालिकाके साथ समागम किया। भारत ! महर्षि व्यासको देखकर वह भी कान्तिहीन तथा पाण्डुवर्णकी-सी हो गयी ॥ १३—१५ ॥

सा तु रूपं च गन्धं च महर्षेः प्रविचिन्त्य तम् । नाकरोद् वचनं देव्या भयात् सुरसुतोपमा ॥ २३ ॥

परंतु देवकन्याके समान सुन्दरी अम्बिका ने महर्षिके उस कुत्सित रूप और गन्धका चिन्तन करके भयके मारे देवी सत्यवती की आज्ञा नहीं मानी ॥ २३ ॥

ततः स्वैर्भूषणैर्दासीं भूषयित्वाप्सरोपमाम् ।प्रेषयामास कृष्णाय ततः काशिपतेः सुता ॥ २४ ॥

काशिराज की पुत्री अम्बिका ने अप्सरा के समान सुन्दरी अपनी एक दासी को अपने ही आभूषणों से विभूषित करके काले-कलूटे महर्षि व्यासके पास भेज दिया ॥ २४ ॥

स्पष्ट है की नियोग में कोसल्या(अम्बिका) और अम्बालिका की सहमति नहीं थी| सत्यवती के आदेश के कारण उसे नियोग करना पड़ा| स्त्री की इच्छा के बिना उसके साथ सम्बन्ध स्थापित करना शीलापहरण कहलाता है, नियोग नहीं| भारतीय कानून भी इसी प्रकार शीलापहरण(rape) को परिभाषित करता है| section 375

375. Rape.-- A man is said to commit "rape" if he-….**First.Against her will.**

Secondly.Without her consent.

राज्य के उतराधिकारी के लिए सत्यवती को ये करवाना पड़ा परन्तु इसमे स्त्री की स्वीकृति अत्यंत महत्वपूर्ण है| बिना स्त्रियों के स्वीकृति उनके साथ सम्बन्ध स्थापित करना नियोग नहीं है| नियोग का उचित उदहारण पांडू और कुंती की कथा से समझ सकते है, उसमे पांडू कुंती को नियोग के लिए कहते है, फिर कुंती नियोग को अस्वीकार कर देती है| पांडू के समझाने के बाद वो नियोग के लिए स्वीकृति दे देती है| अन्ततः स्त्री की इच्छा महत्वपूर्ण है|

44. निराकार से आकार

'सत्यार्थ प्रकाश' के प्रथम संस्करण **"निराकार"** का **"निर्गतः आकारो यस्मात् स निराकारः"** यह विग्रह किया था; परन्तु जनता ने स्वामीजी को लज्जित किया कि इस विग्रह से परमात्मा पहले साकार सिद्ध हो जाता है| क्योंकि उसमें पहले आकार था, तभी तो निकल गया। यदि उसमें कोई आकार नहीं था, तो निकल क्या गया ?

तब स्वामी ने अपने सिद्धान्त भंग के डर से **'सत्यार्थ प्रकाश'** के द्वितीय संस्करण में पूर्व के बहुब्रीहि समास विग्रह को बदलकर तत्पुरुष समास का विग्रह क्रिया- **"निर्गत आकारात् स निराकार:"** पर **'भक्षितेपि लशुने न शान्तो व्याधिः'** (निषिद्ध लहसुन खाया भी सही कि-यह व्याधि दूर हो जावे; पर व्याधि गई भी नहीं) इस न्याय से इस विग्रह में भी परमात्माकी साकारता सिद्ध रही।

"आकार से निकला हुआ" इससे भी उसका आकार सिद्ध ही रहा बल्कि इस विग्रह में त्रुटि भी हो जाती है। वह यह कि द्रव्य से तो गुण होता है; पर गुण से द्रव्य नहीं होता। परमात्मा द्रव्य है, और आकार गुण; तब परमात्मा से तो आकार निकल सकता है; पर गुण-आकार से द्रव्यरूप परमात्मा कैसे निकले ? यह स्वामी ने स० प्र० में स्वयं भी स्वीकृत किया है-**"गुण से द्रव्य कमी नहीं बन सकता"** तब 'निराकार' शब्द से भी उस परमात्मा का आकार सिद्ध हो रहा है|

ब्रह्म दो रूप वाला है – link

45. पृथ्वी भ्रमण खंडन = दयानंदभाष्य

पृथ्वी के भ्रमण का खंडन कर रहे हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम पृथ्वी का भ्रमण नहीं मानते। परंतु जो दयानंद ने पृथ्वी का भ्रमण वेद से सिद्ध करने का प्रयास किया है, उसका खंडन किया जा रहा है-

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः (यजुर्वेद ३.६)

(अयम्) यह प्रत्यक्ष (गौः) गोलरूपी पृथिवी (पितरम्) पालने करनेवाले (स्वः){स्वरादित्यों भवति निरुक्त २.१४}सूर्यलोक के (पुरः) आगे-आगे वा (मातरम्) अपनी योनिरूप जलों के साथ वर्त्तमान (प्रयन्) अच्छी प्रकार चलती हुई (पृश्निः) अन्तरिक्ष अर्थात् आकाश में (आक्रमीत्) चारों तरफ घूमती है ॥६॥

मातरम् = अपनी योनिरूप जलों के साथ वर्त्तमान,, व्याकरण धुरंधर महर्षि जी का क्या ही कहे

आक्रमीत्= चारों तरफ घूमती है|,,, ये अर्थ कैसे बना दिया; जाना, पास आना. आक्रमण आदि अर्थ है चारो तरफ घूमने का प्रमाण समाजी लोग अपने आर्ष ग्रन्थ से दे,

आप कहोगे महर्षि जी ने संस्कृत भाष्य में **"(अक्रमीत्) क्राम्यति"** यह अर्थ किया है| **क्राम्यत्** शब्द सप्तमी विभक्ति एकवचन में पयोग हुआ है| क्राम्यत् का अर्थ चलना अथवा गमन करना होता है| हिंदी भाष्य में "चारों तरफ घूमती है|" यह अर्थ पंडितो ने किया है फिर महर्षि जी पर दोष कैसे लगाया जा सकाता है| इसका उत्तर है की अनुवाद कर्ता ने महर्षि जी के अनुसार ही अर्थ किया है| दयानंद खुद भावार्थ में लिखते है *"पृथिवी जल और अग्नि के निमित्त से उत्पन्न अन्तरिक्ष वा अपनी कक्षा अर्थात् योनिरूप जल के सहित आकर्षणरूपी गुणों से सब की रक्षा करने वाले सूर्य चारों तरफ क्षण-क्षण घूमती है,"* जब क्राम्यत् का अर्थ केवल गमन करने के अर्थ में है तो दयानंद ने चारो तरफ घुमना यह अर्थ कैसे बनाया?

स्वकक्ष्यायामाकर्षणेन रक्षकस्यूर्यस्याभितः (दयानंद भाष्य) गुरुत्वाकर्षण का तो लेश मात्र झलक भी नहीं इस मन्त्र में पर दयानंद ने इसमे गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत भी घुसा दिया

मातरम्= माता, (गर्भो भूत्वा स मातरम् -ऐ० ब्रा)

आक्रमीत्- आ + क्रमु (पादविक्षेपे)'घञ्' (३-३-१८),, निर्भयता से जाना, रक्षण करना, बढ़ना

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ।। ६ ।।

उ० आयं गौः पृश्निः । सार्पराज्ञ्य आर्षम् । गायत्रस्तृचः आहवनीयाग्न्युपस्थाने विनियुक्तः। अग्निः परापररूपेण स्तूयते। आयं गौः पृश्निरक्रमीत् । आक्रमीत् आक्रमते ऐश्वर्यरूपेणायमग्निः गौः गन्ता। सर्वासु तासु तासु क्रियासु पृश्निर्नानारूपः असदन्मातरं पुरः इमं लोकमग्निरूपेणानुगृह्य ततः प्रातरादित्यात्मना सीदति मातरं पृथिवीं पुरः पुरस्तात्प्राच्यां दिशि । किंच पितरं च प्रयन्त्स्वः पितरं द्युलोकं च प्रयन् गच्छन् सीदतीत्यनुवर्तते । स्वः स्वर्गे आदित्यः ॥ ६ ॥

म० 'आयं गौरिति चोपतिष्ठते सार्पराज्ञीभिर्दक्षिणाग्निमादधातीति' (का० ४ । ९ । १८-१९) । आयं गौरित्यादीनां तिसृणामृचां सार्पराज्ञीति नामधेयम् । सर्पराज्ञी कद्रूः पृथिव्यभिमानिनी । तया दृष्टत्वात् ताभिर्ऋग्भिराहवनीयमुपतिष्ठते । ततो दक्षिणाग्निमादध्यादिति सूत्रार्थः । गायत्रस्तृचः । अग्निः परावररूपेण स्तूयते । अयं दृश्यमानोऽग्निः आ अक्रमीत् सर्वत आहवनीयगार्हपत्यदक्षिणाग्निस्थानेषु सर्वतः क्रमणं पादविक्षेपं कृतवान् । किंभूतोऽग्निः । गच्छतीति गौः यज्ञनिष्पत्तये तत्तद्यजमानगृहेषु गन्ता । 'गमेर्डोप्रत्ययः' (उ० २ । ६६)। तथा पृश्निः चित्रवर्णः । लोहितशुक्लादिबहुविधज्वालोपेतः । आक्रमणमेवाह । पुरः प्राच्यां दिशि मातरं पृथिवीमसदत् आसीदत् आहवनीयरूपेण प्राप्तवान् । तथा स्वः प्रयन् आदित्यरूपेण स्वर्गे संचरन् पितरं च द्युलोकमपि असदत्प्राप्तवान् । स्वःशब्देन सूर्यः (निघ० १ । ४ । १)। द्युलोकभूलोकयोर्मातापितृत्वमन्यत्रापि श्रूयते । 'द्यौः पिता पृथिवी माता' इति ॥ ६ ॥

कुछ समाजी **मतरम्** का अर्थ जल करने का प्रयास करते है

मतरम् का अर्थ पृथ्वी

यज्ञ का प्रकरण है यहाँ ५ वे मन्त्र में कहा गया

देव यजनि पृथिवि= देवों के यजन के लिए स्थान देनेवाली पृथिवी !; **तस्याः ते पृष्ठे** = उस तेरी पीठ पर; **अन्नाद्याय** = अन्न के भक्षण के लिए; **अन्नादं अग्निं आ दधे** = अन्न भक्षक अग्नि की स्थापना करता हूँ। (इससे); **भूम्ना द्यौः इव** = मै विशालता से द्युलोक के समान और; **वरिम्णा पृथिवी इव**= वरिष्ठता से पृथिवी के समान होऊं

यजमान यज्ञ के लिए पृथ्वी के पीठ पर यज्ञ की स्थापना कर रहा है स्वयं पृथ्वी के सामान होने की कमाना है| अगले मन्त्र में अग्नि पृथ्वी के पास जा रही है स्थापित हो रही है इसीलिए **"पुरः मातरम् असदत्"**(3.6) = प्रथम माता के पास गया अथवा माता का आश्रय लिया | अब अग्नि तो पृथ्वी पर ही आश्रित होती है समाजियों के यहाँ जल में आग लगती है क्या?

गौरिति पृथिव्या नामधेयम् । यद् दूरं गता भवति । यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति । गावकारो नामकरणः । निरुक्त

= **गौ:** यह पृथिवी का नाम है, क्योंकि दूर गई हुई होती है। और जो इस पर भूत' जाते हैं। गाति से अथवा ओकार नामकरण = कृत् प्रत्यय है।

समाजी इसपर नंगा नाच करते है यहाँ कहा लिखा है की पृथ्वी सूर्य के चारो तरफ गति करती है| पृथ्वी दूर गई हुई है इससे क्या सिद्ध होता है? 'गौ' में 'गम्' धातु है जो गति अर्थ में आता है इसीलिए यास्क ने पृथ्वी के साथ इसकी समानता दिखाने का यत्न किया है| और वो भी ठीक से दिखा नहीं पाये|

इसी मन्त्र के भाष्य करते हुए महर्षि जी अपने भाष्य भूमिका में लिखते थे

(श्रायं गौः ०) श्रयं गौः पृथिवीगोल: सूर्यश्चन्द्रोऽन्यो लोको वा पृश्निमन्तरिक्षमाक्रमीदा- क्रमणं कुर्वन् सन् गच्छतीति, तथान्येऽपि। त्रातरं समुद्रजलमसदत् समुद्रजलं प्राप्ता सती, तथा (स्वः) सूर्य पितरमग्निमयं च पुरः पूर्व पूर्व प्रयन् सन् सूय्र्यस्य परितो याति। एवमेव सूर्यो वायुं पितरमाकाशं मातरं च, तथा चन्द्रोऽग्निं पितरमपो मातरं प्रति चेति योजनीयम्। *" वे सब अपनी-अपनी परिधि में, अन्तरिक्ष के मध्य में सदा घूमते रहते हैं। परन्तु जो जल है, सो पृथिवी की माता के समान है। क्योंकि पृथिवी जल के परमाणुओं के साथ अपने परमाणुत्रों के संयोग से ही उत्पन्न हुई है। और मेघमण्डल के जल के बीच में गर्भ के समान सदा रहती है।"*

ये वेद मन्त्र से सिद्ध करके दिखाए समाजी,, कहा लिखा है| अपने मन से कुछ भी लिख देतो हो? आगे दो मन्त्र और है उसमे भी यही फालतू अर्थ किया है शब्द कुछ है अर्थ कुछ है| वेद में कोई ऐसा मन्त्र नहीं है जिसमे ये लिखा हो की पृथ्वी सूर्य के चारो तरफ घुमता है|

दयानंद **ऋग्वेद ८.४८.१३** मे चन्द्रमा पृथ्वी के चारो ओर घुमता है यह अर्थ किया है| जबकि शिव शंकर समाजी ने दूसरा ही अर्थ किया है

मैं जैसे (ऋदूदरेण) शरीरहितकारी उदररक्षक (सख्या) मित्रसमान लाभदायक सोमरस को (सचेय) ग्रहण करता हूँ, तद्वत् अन्यान्य जन भी करें। (यः+पीतः) जो पीने पर (मा+न+रिष्येत्) मुझको हानि नहीं पहुँचाता है, वैसे स्वल्प पीने से किसी को हानि न पहुँचावेगा। (हर्य्यश्व) हे आत्मन्! (अयम्+यः+सोमः) यह जो सोमरस (अस्मे+न्यधायि) हम लोगों के उदर में स्थापित है, वह चिरकाल तक हमें सुखकारी हो (तस्मै+प्रतिरम्+आयुः) उससे आयु अधिक बढ़े, ऐसी (इन्द्रम्+एमि) ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ॥१०॥

समाजी कहेंगे की वेद के तो तीन प्रकार के अर्थ होते है| इसी चक्कर में किसी वेद मन्त्र का एक निश्चित अर्थ समाजी लोग निर्धारित नहीं कर पाए है| वास्तव में सभी वेद मंत्रो के तीन प्रकार के अर्थ नहीं होते है|

दयानंद ऋग्वेद १०.६५.६ का अर्थ करते है -

(अवारतः) निरन्तरं भ्रमती सती , पर्य्येति विवस्वतेऽर्थात् सूर्यस्य परितः सर्वतः स्वस्वमार्गं गच्छति

अवारतः इस शब्द का अर्थ ब्रह्म मुनि ने **"बिना अवरोध के"** किया है| यदि **'निरंतर' 'अवारतः'** का अर्थ मान भी लिया जाये फिर भी आगे जो दयानंद कह रहे है की पृथ्वी आदि लोक सूर्य के चारो ओर घुमते है| यह तो **अवारतः** शब्द का अर्थ नहीं है| फिर दयान्द ने यह अर्थ कैसे किया ? अन्य शब्दों का भी यही हाल है| कुछ यहाँ उदहारण के रूप में दिखाया गया है| बुद्धिमान लोग इतने से ही दयानंद भाष्य की सत्यता को समझ जायेंगे| गुलाम कल भी गुलामी करते थे आज भी गुलामी करेंगे

(व्रतनीः) व्रतं स्वकीय- भ्रमणादिसत्यनियमं प्रापयन्ती-

ये देखो अब मै क्या बोलू

46. वेदों में स्थिर पृथ्वी

यः पृथ्वीं व्यथमानामदृहत् यः जनास इंद्रः-.ऋग 2/12/2

अर्थात हे मनुष्यो, जिस ने कांपती हुई पृथ्वी को स्थिर किया, वह इंद्र है.

सायन ने पृथ्वी को गमन शील कहा है ठीक बात है पर इसी सायन ने इसे स्थिर भी कहा है| सायन के अनुसार पहले पृथ्वी मे गति थी वह हिलती डुलती रहती थी बाद मे इंद्र ने उसे स्थिर किया। इस प्रकार देखो तो कोई विरोधाभास नही है।

सायन भाष्य- **हे जनाः य इंद्रो व्यथमानां चलंतीं पृथिवीमदृंहत**

=हे लोगों, वह इंद्र जिसने हिलती हुई पृथ्वी को स्थिर किया है|

पृ॒थि॒वी च॑ दृ॒ढा येन॑ -यजु ३२.६

=जिसने पृथ्वी को दृढ=स्थिर किया है|

दृढ शब्द '**दृह वृद्धौ**' धातु से बना है तो समाजी यहाँ आनंद नृत्य कर सकते है| परन्तु इससे पृथ्वी को बढाया ऐसा निरर्थक अर्थ बन जायेगा| दृढ स्थिर अर्थ में प्रयोग होता है|

दृढ a. [दृंह्-क्त नि° नलोपः] 1 Fixed, firm, strong, unswerving, untiring; Bg. 15. 3; H. 3. 65; R. 13. 78

ध्रुवां भूमिं पृथिवीं चरेम अथर्व, १२.१.१७

अर्थात हम सदा विस्तृत और अचल भूमि पर विचरण करें.

ध्रुवं , क्ली, (ध्रुवति स्थिरीभवतीति । ध्रु + "स्रुवः कः ।" उणां । २ । ६१ । इत्यत्र ध्रुवति स्थिरीभवतीति

ध्रु स्थैर्ये आदि धातु पाठ में उपलब्ध है|

वेदों में पृथ्वी के लिए **'निर्ऋति'** शब्द का प्रयोग भी हुआ है. वेदों के कोश निघंटु (1/1) में **'निर्ऋति'** शब्द पृथ्वी के पर्यायवाचियों में लिखा है. इस का अर्थ है: **निर् + ऋति (ऋ गतौ)** अर्थात **गतिहीन**. इसीलिए आज तक संस्कृत और हिंदी के शब्दकोशों में पृथ्वी का एक नाम 'अचला' (गतिहीन) है. ऐसे में वेदों में विज्ञान की क्या आशा की जा सकती है? इसीलिए समाजी लोग वास्तविक विज्ञान की पुस्तक पढ़े वेदों में विज्ञान न खोजे